CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

श्रीमन्महाराज-रघुराज सिंह-जूदेव-विरचितं

जगदीश-शतकम्

श्रीमद् - रंगाचार्य - वाधूल - कृतया
विवृत्ति-टीकया समुल्लसितम्

Sanskrit Pratishthan Fort Ramnagar Varanasi 28 .. 96

डॉ. सुद्युम्न आचार्य - कृतया
सुक्षेमाख्यया व्याख्यया विभूषितं
टिप्पण्यादिभिश्चालंकृतम्।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

श्रीमन्महाराज-रघुराज सिंह-जूदेव-विरचितं

जगदीश-शतकम्

विश्वभाषा में समालोचनार्थ सादर प्रेषित
25.2.90

विवृत्ति-टीकाकारः

श्रीमद् - रंगाचार्यो वाधूलः

सुक्षेमा-व्याख्याकारः

डॉ. सुद्युम्न आचार्यः

व्याकरणाचार्यः, M.A. (अष्टस्वर्णपदकविजेता) D. Phil.

रीडर - स्नातकोत्तर संस्कृत विभागः

मु.म. टाउन पोस्ट ग्रेजुएट कालेज

बलिया (उ.प्र.)

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

प्रकाशक—

वेद वाणी वितानम्

प्राच्य विद्या शोध संस्थानम्

कोलगवाँ, सतना (म. प्र.)

प्रथम बार— १०००

मूल्य— २२/- रु. मात्र

वर्ष— फरवरी १९९५

मुद्रक—

तारा प्रिंटिंग वर्क्स

वाराणसी

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

पद्मभूषण आचार्य पं. बलदेव उपाध्याय का

आशीर्वचन

श्रीजगदीशशतकम् नामक पुस्तक का प्रारम्भिक अँश देखा। प्रस्तुत शतक के प्रणेता रीवा नरेश रघुराज सिंह जूदेव हैं। शतक का रचना काल १८५६ ई. है। श्रीजगदीशशतक की 'विवृत्ति' नामक टीका अत्यन्त वैदुष्य पूर्ण है, जिसमें कथन की पुष्टि में शास्त्रीय वचन पर्याप्त मात्रा में उद्धृत हैं।

प्रस्तुत शतकम् का प्रकाशन डॉ. सुद्युम्न आचार्य के सम्पादकत्व में 'विवृत्ति' टीक़ा के साथ हुआ है। डॉ. आचार्य ने प्रस्तुत पुस्तक का सम्पादन अत्यन्त परिश्रम से किया है। सम्पादक महोदय को इस पुस्तक का हस्तलेख रीवा किला में स्थित सरस्वती पुस्तकालय के सौजन्य से प्राप्त हुआ है। पुस्तक के हस्तलेख को देखने का मुझे अवसर मिला। हस्तलेख अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण था, जिसका पुनर्लेखन करके सम्पादन किया गया है। जीर्ण शीर्ण हस्तलेख को पुस्तकीय रूप देना परिश्रमसाध्य कार्य है। डॉ. आचार्य इसके लिए साधुवाद के पात्र हैं। प्रस्तुत पुस्तक का बनारस में सर्वप्रथम लीथो मुद्रण हुआ था। तत्पश्चात् इस पुस्तक का प्रथम आफ्सेट प्रकाशन डॉ. आचार्य के द्वारा सम्पन्न हुआ है।

जगदीशवन्दनापरक इस ग्रन्थ की 'विवृत्ति' टीका विषय प्रतिपादन की दृष्टि से अपने में पूर्ण है, परन्तु ड़ॉ. आचार्य ने टीका में उद्धृत शास्त्रीय वचनों का पाद टिप्पणी में सन्दर्भ देकर इसकी कमी को दूर कर दिया है। क्योंकि टीका में उद्धरणों के सन्दर्भ नहीं दिये गये हैं। सम्पादक की 'सुक्षेमा' नामक व्याख्या में श्लोक का अन्वय तथा कतिपय समस्त पदों का विग्रह भी दे दिया गया है। सम्पादक ने श्लोकों का भाषार्थ भी दिया है और यत्र तत्र 'अनुशीलन' के माध्यम से विषय को स्पष्टता प्रदान की है। अनुवाद की भाषा सरल, प्राञ्जल और बोधगम्य है। संस्कृत के अभ्युत्थान में प्रस्तुत शतक का प्रकाशन उपादेय है।

मैं डॉ. आचार्य की सारस्वत साधना की उत्तरोत्तर वृद्धि की कामना करता हूँ।

बलदेव उपाध्याय

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुक्षेमा-व्याख्याकार की
भूमिका

साहित्य जगत् के लिये यह महती प्रसन्नता का विषय है कि १२० वर्ष के सुदीर्घ अन्तराल के पश्चात् इस ग्रन्थरत्न का प्रकाशन हो रहा है। इसका सर्वप्रथम लिथो मुद्रण बनारस लाइट छापाखाना में संवत् १९२२ (१८६५ई.) में तथा द्वितीय लिथो मुद्रण रीवा में संवत् १९३१ (१८७४ई.) में हुआ था। इसके पश्चात् यह भक्ति रसिकों के लिये सर्वथा दुष्प्राप्य हो गया था। अत: भाषार्थ, टिप्पणी आदि के साथ इसका ऑफसेट मुद्रण कराया जा रहा है। यह प्रकाशन 'बघेल खण्ड प्राचीन ग्रन्थमाला' के द्वितीय पुष्प के रूप में है। इससे पूर्व प्रथम पुष्प के रूप में जगन्नाथ शतक' का प्रकाशन हो चुका है।

इस ग्रन्थ का निर्माण निश्चित रूप से विक्रम संवत् १९१३ (१८५६ई.) तैष पौष मास शनिवार अमावास्या की तिथि को पूर्ण हुआ था। यह तथ्य इस ग्रन्थ के श्लोक ११० में स्पष्ट रूप से वर्णित है।

विवृत्ति टीकाकार ने प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट लिखा है कि महाराज रघुराज सिंह जगन्नाथ पुरी की यात्रा के समय सर्वथा भक्तिमय तथा 'दर्शन' के लिये सर्वथा उत्सुक एवं अधीर थे। उसी भक्तिप्रेम प्रवाह की दशा में उन्होंने इस स्तुति की रचना की थी।

ग्रन्थ का महत्त्व— ग्रन्थ के रचनाकार का हिन्दी, संस्कृत में समान अधिकार था। अत एव उन्होंने दोनों भाषाओं में अत्यन्त वैदुष्य एवं काव्यपूर्ण रचनाएँ साहित्य जगत् को प्रदान की हैं। प्रस्तुत रचना भाषा, छन्द, अलंकार आदि शिल्प तथा कथ्य की दृष्टि से अनुपम है तथा रचनाकार के पाण्डित्य का निकष है। उनकी संस्कृत रचनाओं में

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यह सर्वश्रेष्ठ है। इस तथ्य को डॉ. राजीव लोचन अग्निहोत्री ने इस प्रकार लिखा है—

'जगदीशशतकम्' बघेलखण्ड के उत्कृष्ट संस्कृत काव्यों में से एक तथा रघुराज सिंह की सर्वोत्तम कृति है। यह एक ही कृति इस कवि को संस्कृत के क्षेत्र में अधिकार प्रदान कर देती है'।

—*बघेलखण्ड के संस्कृत काव्य पृ. २४१*

ग्रन्थ का विषय— प्रस्तुत रचना स्पष्टतः श्री जगदीश की भक्ति के लिये समर्पित है। विवृत्तिकार ने प्रारम्भ के तीसरे श्लोक में सहज ही कहा है कि श्री जगन्नाथ इस रचना के मुख्य विषय हैं, जिसका आशय अत्यन्त व्यापक है। इस प्रकार ईश्वर भक्ति ही इस ग्रन्थ का स्थायी भाव है। उनके विविध रूप इसके आलम्बन हैं। जगन्नाथ पुरी की यात्रा इसका उद्दीपन है। ईश्वर की महत्ता, मानव की अधम दशा तथा इससे छुटकारा पाने के लिये निवेदन इसका अनुभाव है तथा इसके लिये चिन्ता, निरन्तर सोच विचार इसका सञ्चारीभाव हैं।

भक्ति की इस प्रबल भावना में श्लोक १०९ आदि के अन्तर्गत प्रस्तुत कवि तथा विवृत्तिटीकाकार ने भी माना है कि इस जगदीश-शतक का पाठ करने से तथा पाठ में असमर्थता की दशा में केवल सुनने मात्र से भी ईश्वर प्रसन्न होते हैं।

ग्रन्थ रचना की प्रेरणा— कवि को इस ग्रन्थ की प्रेरणा निश्चय ही वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण आदि से प्राप्त हुई है। यह विदित होता है कि रचनाकार ने इन ग्रन्थों का सूक्ष्म परिशीलन किया था। भारतीय संस्कृति के उपादान इन पवित्र ग्रन्थों से ही निर्मित हुए हैं। प्रस्तुत कवि ने उनका अत्यन्त आलंकारिक रीति से वर्णन करते हुए उन्हें विकसित करने में सफलता पाई है।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

कुछ उदाहरणों से यह प्रकट हो सकता है कि कवि ने अति प्राचीन मान्यताओं को ही परिपुष्ट किया है। यथा—

१. एकेश्वरवाद की अवधारणा वैदिक काल से ही चली आई है। उसके अनुसार एक ही ईश्वर अपनी विभिन्न शक्तियों के कारण अनेक रूपों में सुपूजित होता है। वेदों के व्याख्याकार निरुक्तकार यास्क का इस विषय में यह कथन सर्वथा समीचीन है कि—

माहाभाग्याद् देवताया एक एवात्मा बहुधा स्तूयते।

—*निरुक्त ७.४.८*

अर्थात् 'सर्वदेव जगदीश्वर की विविध शक्तियों के कारण उसी एक की अनेक प्रकार से स्तुति की जाती है।' इसका ही प्रतिपादन अनेक बार अंनेक रीति से उपनिषदों में भी किया है।

प्रस्तुत कवि ने इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन इस श्लोक में अत्यन्त आलंकारिक रीति से किया है—

यच्छक्त्या हरते हरो विधिरपि स्रष्टा च शास्ता यमो...।

...श्लोक ८

इस श्लोक के द्वारा एक ही ईश्वर में अपनी विविध शक्तियों के द्वारा विनाशकत्व, स्रष्टृत्व, शासकत्व, अग्निदाहकत्व, चन्द्रसुखकरत्व जैसी परस्पर विरोधी लगने वाली शक्तियों का आरोप किया गया है। अत: यहाँ अलंकार शास्त्र की दृष्टि से 'उल्लेख' अलंकार है। अलंकार सर्वस्वकार के अनुसार 'उल्लेख' का लक्षण 'एकस्यापि निमित्तवशादनेकधाग्रहणमुल्लेख:' यह है। यहाँ एक ही ईश्वर का उसकी विविध शक्ति रूपी निमित्त के द्वारा उसका अनेक प्रकार ग्रहण होने से 'उल्लेख' नामक अलंकार है।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यहाँ यह कहना प्रासंगिक है कि प्रस्तुत कवि ने अपने हिन्दी ग्रन्थ 'जगन्नाथ-शतक' में इसी सिद्धान्त को इस प्रकार प्रकट किया है—

अनिल के अनिल अनल के अनल सोई

...कवित्त संख्या १२

वहाँ पर इसी सिद्धान्त को प्रकट करने के लिये अन्य ही अलंकार की छटा बिखेरी गई है, जिसे प्रस्तुत व्याख्याकार ने उस ग्रन्थ की भूमिका में प्रकट किया है।

२. ईश्वर निराकार है। फिर भी वेद में रूपक अलंकार से उसके अनेक अंगों का वर्णन किया गया है। इस विषय में विराट् विश्वरूप पुरुषविशेष का वर्णन करने वाला पुरुष सूक्त अति प्रसिद्ध है। उसका प्रथम मन्त्र इस प्रकार है—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

—यजुर्वेद ३१.१

अर्थात् वह पुरुषविशेष ईश्वर हजार सिर, हजार आँख तथा हज़ार पैरों वाला है। यहाँ रूपक अलंकार से 'हजारों सिर, हजारों आँख तथा हजारों पैरों की विशाल शक्ति के समान अनन्त शक्ति वाला है' यह तात्पर्य समझा जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ जगदीश-शतकम् के श्लोक ७ में भी इसी भावना के आधार पर रूपक अलंकार से जगदीश के अनेक अंगों का वर्णन किया गया है—

यः पातालपदो महीकटितटः स्वर्लोकशीर्षोऽस्ति यो..।

...श्लोक ७

स्पष्टतः यहाँ यह भावना बहुत विस्तार से प्रकट हुई है।

.Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

३. ईश्वर सर्वव्यापक है। इस आधार पर महाभारत में उसका एक नाम वासुदेव बताया गया है—

छादयामि जगद् विश्वं भूत्वा सूर्य इवांशुभिः।
सर्वभूताधिवासश्च वासुदेवस्ततो ह्यहम्।।

—महाभारत, शान्तिपर्व ३४१. ४१

अर्थात् जैसे सूर्य अपनी किरणों से इस विश्व को आच्छादित करता है, उसी प्रकार मै भी इस विश्व को आच्छादित करता हूँ। साथ ही संभी प्राणियों का निवास स्थान हूँ। अत: मै वासुदेव हूँ।

इसी भावना से प्रेरित होकर प्रस्तुत ग्रन्थ के श्लोक ६ में 'सर्वगत:' का प्रयोग किया गया है।

इस विवेचन से प्रकट है कि जगदीश शतकम् में प्राचीन मान्यताओं को ही आधार बनाकर काव्यपूर्ण रचना प्रस्तुत की गई है।

इस ग्रन्थ के श्लोक ९९ में 'सत्यविश्वप्रकाशी' से प्रकट है कि प्रस्तुत रचनाकार को अद्वैत वैदान्त का जगन्मिथ्यात्ववाद स्वीकार्य नहीं था। साथ ही श्लोक ७८ से ध्वनित है कि वे वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित थे। क्योंकि इस श्लोक तथा इसकी विवृत्ति में लिखा है कि ईश्वर ने ही उन्हें इस अपने सम्प्रदाय में अनुरक्त किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के टीकाकार— यह सौभाग्य का विषय है कि इस ग्रन्थ की टीका महाविद्वान् रंगाचार्य वाधूल ने की है। महाराज रघुराज सिंह ने अपने आनन्दाम्बुनिधि के अन्त में इनका इस प्रकार परिचय दिया है—

दक्षिण यादवाद्रि के वासी। अति सुशील सुन्दर मतिरासी।
जिनको नाम अनन्ताचारी। तिनके पुत्र नृसिंहाचारी।
रंगाचार्य पुत्र हैं तिनके। शील स्वभाव अनूपम जिनके।
न्याय वेदान्त व्याकरण आदिक। सकल शास्त्र ज्ञाता मरयादिक।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

जाति घंटावतार परकाला। तिनके शिष्य सुबुद्धि विशाला।
करि दाया रीवाँ पगु धारे। भये सहायक आय हमारे।

इस वर्णन से प्रकट है कि आप मूलतः दक्षिण भारत के निवासी थे। इनके दादा का नाम अनन्ताचार्य था तथा पिता का नाम नृसिंहाचार्य था। इनके गुरु का नाम घंटावतार परकालयति था। महाराज ने श्री रंगाचार्य को अत्यन्त सम्मानित शब्दों में याद किया है। उपर्युक्त पद्य के अन्त में कहा है कि आप दया करके रींवा में पधारे हैं तथा आकर हमारे सहायक बने हैं।

इनके दादा श्री अनन्ताचार्य काञ्चीपुरी के महन्त थे। ये महाराज विश्वनाथ सिंह के समकालीन थे। इन्होंने महाराज के पास पत्र लिखकर कुछ प्रश्न भेजे थे। महाराज विश्वनाथ सिंह ने इन प्रश्नों का उत्तर विस्तार पूर्वक अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण रीति से संस्कृत भाषा में भेजा था। यह प्रश्नोत्तर इतना प्रसिद्ध हुआ कि 'रामपरत्वम्' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ बन गया।

इस प्रकार विद्वानों की परम्परा में उत्पन्न श्री रंगाचार्य स्वयं महाविद्वान् थे। इनकी यह विवृत्ति टीका इतनी वैदुष्यपूर्ण तथा पाण्डित्यपूर्ण है कि यह स्वतन्त्र ग्रन्थ बनने योग्य है। यह सौभाग्य है कि जगदीश-शतकम् की टीका के बहाने यह ग्रन्थ प्रकाश में आ सका। इसमें व्याकरण, काव्य वेद, उपनिषद् आदि के उद्धरणों की भरमार है। एक ही पद्य के अनेक प्रकार के अर्थ अत्यन्त विलक्षण हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस टीका के द्वारा 'जगदीश-शतकम्' की महत्ता सौगुना बढ़ गई है।

प्रस्तुत व्याख्या— इस गम्भीर ग्रन्थ को सरल तथा लोकप्रिय बनाने के लिये मैंने श्लोकों का अन्वय, समास आदि तथा भाषार्थ प्रस्तुत

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

किया है। अनुशीलन के अन्तर्गत मैने केवल वही साहित्यिक तथा भाषा-वैज्ञानिक तथ्य प्रस्तुत किये हैं, जो विवृत्ति टीका में प्राप्त नहीं है। ताकि पिष्ट-पेषण न हो। अनेक सम्बद्ध उद्धरणों को विवृत्ति टीका में ही देखना चाहिये। मैने उन उद्धरणों के पते नीचे टिप्पणी में दे दिये हैं।

धन्यवाद प्रकाशन— इस पुस्तक की छाया प्रति मुझे किला, रीवा के कंट्रोलर महोदय माननीय श्री रमाशंकर मिश्र के सौजन्य से प्राप्त हुई है। अत: मै उन्हें हार्दिक धन्यवाद प्रकट करता हूँ।

सम्माननीय श्रीमान् आचार्य स्वतन्त्रदेव जी महाराज, इलाहाबाद इस प्रकार के कार्यों के प्रति गहरी रुचि रखते हुए मुझे सदा प्रोत्साहित करते हैं। अत: मै उनके लिये हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

सदा वन्दनीय पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय जी ने पुस्तक के लिये आशीर्वचन लिखने की कृपा की है। इसके लिये मै उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

यह केवल संयोग ही नहीं है कि मैंने इस व्याख्या का नाम 'सुक्षेमा' रखा है। मेरी ज्येष्ठ पुत्री का नाम भी 'सुक्षेमा' है। मेरा आशीर्वाद है कि वह संस्कृत साहित्य के कार्यों में सदा प्रगति करती रहे।

—व्याख्याकार

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

श्री जगदीशशतकं सटीकम्

विवृत्तिः

वीक्षामात्रावक्लृप्ताखिलजगदुदयस्थेमसंहारलीलं
स्थित्या वारीशतीरे भवजलधिसमुत्तारणं स्फोरयन्तं
संसृत्यम्भोधिमध्यभ्रमदगतिजनालम्बविस्रम्भहेतो-
र्दारव्यां दिव्यमूर्तौ प्रकटितविभवं नीलशैलेशमीडे।।१।।

नवजलधरगात्रं नीरजस्पर्धिनेत्रं
स्मितविकसितवक्त्रं सिन्धुकन्याकलत्रं
शमितनमदमित्रं शेषशय्यातपत्रं
परमतमपवित्रं पातु मां पार्थमित्रम्।।२।।

यस्याः श्रीरघुराजसिंहनृपतिः प्रज्ञावदग्रेसरो
भाषासंस्कृतभव्यकाव्यरचनाचातुर्य्यधुर्य्यः कविः,
श्रीमन्नीलगिरिप्रभुर्हि विषयो निस्सीमभूमाशयो
गम्भीरो विवरीतुमीदृशकृतिं को वा कृती शक्नुयात् ।३।।

यथामति तथाप्येतद्विवृत्तिं मत्कृतामिमाम्।
ऊरीकुर्वन्तु कृतिनो गुणग्रहणतत्पराः।।४।।

अथ खलु श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीकृष्ण चन्द्र कृपापात्राधिकारी सकलसपत्नराजशिरोराजद्रत्नराजिनीराजितचरणराजीवः श्रीरघुराजसिंहनामा बान्धवाचलाधिराजः श्रीमन्नीलाचलाधिराजसन्दृक्षया प्रस्थितो मध्ये तद्दर्शनविलम्बमसहमानः कदा कदा द्रक्ष्यामीति तद्दर्शनौत्सुक्यातिरे-

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

काविष्टमनास्तमेवानारतमनु सन्दधानो 'यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदतीत्युक्तरीत्या वाचापि तमेव तोष्टूयमानस्तदानुसन्धानजनितप्रेमपरीवाहरूपां पठनश्रवणमात्रेण सकलजनपावनी श्रीमज्जगन्नाथशतकाख्यां स्तुतिमरीरचत्। अत्र पूर्वोत्तरपद्यानां झञ्झा मारुतधूतचूतफल पातन्यायेन साम्पातिकक्रमत्वेन संगत्यनपेक्षलक्षणान्नासंगतत्वशंकावसरः। तत्र तावदादौ कृत्स्नजगदवभासकत्व जगत्कारणत्व दौर्लभ्यसौलभ्यादिगुणैः स्तौति-यद्भासेति।

यद्भासा सुविभाति विश्वमखिलं सार्केन्दुतारागणं
यत् किञ्चिद्भ्रुकुटीकटाक्षकलया नाशोद्भवौ पालनम्।
यत् पादाम्बुजधूलिधारणविधौ कुर्वन्ति यत्नं सुरा-
स्तन्नीलाचलवासिनं यदुपतिं वन्दे जगद्वन्दितम्।।१।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यस्य भासा अर्केण इन्दुना तारागणेन च सहितम् अखिलं विश्वं विभाति। यस्य किञ्चिद् भ्रुकुटीकटाक्षयोः कलया नाशः उद्भवः पालनम्। यस्य पादाम्बुजयोः धूलेर्धारणविधौ सुराः यत्नं कुर्वन्ति। तं नीलाचलवासिनं जगता वन्दितं यदुपतिं वन्दे।

भाषार्थ— जिसके प्रकाश से सूर्य, चन्द्र तथा तारासमूह के साथ सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित होता है। जिसके किञ्चित् भ्रुकुटी कटाक्ष की कला से (जगत् का) विनाश, उत्पत्ति तथा पालन होता है। जिसके चरणकमलों की धूल को धारण करने के लिये देवता भी प्रयत्न करते हैं, उन नीलाचल में निवास करने वाले, सम्पूर्ण विश्व के द्वारा वन्दित यदुपति की मै वन्दना करता हूँ।।१।।

विवृत्तिः— यद्भासा यस्य नीलाचलवासिनो यदुपतेः भासा दिव्यतेजसा, अखिलं विश्वं कृत्स्नं जगत्, सुविभाति सुष्ठु प्रकाशत इत्यर्थः। 'सर्वेभ्यो ज्योतिष्टोम' इत्यत्र सर्वशब्दस्येव विश्वशब्दस्यापि

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

संकोचः सम्भाव्येत अतो ऽखिलमित्युक्तिः। ननु कृत्स्नस्य जगतो भगवदभासभास्यत्वं नोपपद्यते, सूर्यचन्द्रादीनां स्वतो भानदर्शनादित्यत्राह सार्केन्दुतारागणमिति। सूर्यादीनामपि भानं भगवदवभासाधीनमेव। तेषां स्वतो भासमानत्वव्यवहारस्तु घटादेरिव प्रदीपादिप्रकाशकान्तरनिरपेक्षभानाभिप्राय इत्याशयः। यद्वा ननु विश्वस्य भगवद्भासभास्यत्वं न युज्यते, स्वतो भासमानसूर्य्यादिभास्यत्वस्यैव दर्शनादित्यत आह-सार्केत्यादि। न हि सूर्य्यादयः स्वतो भासन्ते न वा स्वातन्त्र्येण जगदवभासयन्ति। अपितु भगवद्भासैव भासमानास्तदनुगृहीता एव जगदवभासका इति युज्यत एव। सर्वस्यापि भगवदवभासभास्यत्वमिति भावः। अत्र *'न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'*[१]। *'यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयते ऽखिलं यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तजो विद्धि मामक'*[२] मित्यादिश्रुतिस्मृतयो ऽनुसन्धेयाः। कारणं तु ध्येयम् इति *श्रुतिमभिप्रयन्ध्येयाकारं* कारणत्वमाह यदित्यादिना यत्किंचिद्भ्रुकुटीकटाक्षकलया यस्य नीलाचलवासिनो यदुपतेः किंचिद्भ्रुकुटीकटाक्षकलया भ्रुकुटी भ्रूभंगः कटाक्षोपांगदर्शनं तयोः किंचित् कलया लेशेनेत्यर्थः। भ्रुकुटीकटाक्षयोरुभयोरुपादानमुभयोरपि कार्यपूर्वभावनैयत्या विशेषात्। यद्वा प्रलयाभिप्रायं भ्रुकुटीग्रहणं संकर्षणादिरूपस्य प्रलयकर्तुर्भगवतः क्रोधावेशेन भ्रुवः कौटिल्यात्। अथवा कटाक्षशब्दोऽत्र विक्षेपलाक्षणिकः। भ्रुकुटीविक्षेपस्य किंचित् कलयेत्यर्थः। विनायासं संकल्पमात्रेणैव जगज्जन्मादिकारणमित्याशयः। तथा च श्रुतिः

१. श्वेताश्वतर उपनिषद् ६/१४ २. भगवद्गीता १५/१२

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय'[१] त्यादिः। नाशोद्भवाविति - विश्वमित्यनुषक्तं षष्ठ्या विपरिणम्यते। नाशश्चतुर्विधः, प्रलयः- सदेव सोम्येदमग्रमासीदित्यादिषु सृष्टेः प्रलयपूर्वकत्वश्रवणाच्छ्रौतीं रीतिमनुसृत्य प्रलयस्य प्रथमत उक्तिः। उद्भवः - त्रिविधोत्पत्तिः पालनं मातापितृमनु महीपाललोकपालादिरूपेण क्रियमाणसर्वविधरक्षा, एतत् सर्वं यत् कटाक्षाधीनमित्यर्थः। यत्पादाम्बुजेत्यादि - यस्य पादाम्बुजयोः धूलेरजसः धारणविधौ धारणात्मके व्यापारे धारणेन यो विधिः भागधेयं तस्मिन्निति वा धारणात्मके भागधेये इति वार्थः। 'भाग्यं स्त्री नियतिर्विधि' रित्यमरः। सुरा इति अपि शब्दोऽध्याहर्तव्यः। सुरा अपीत्यर्थः। यत्नमिति-अब्भक्षो, वायुभक्ष इत्यत्रेवावधारणं विवक्षितम्। सुरा अपि यत्नमेव कुर्वन्ति, न तु प्राप्नुवन्ति, किं पुनर्मानवा इत्यर्थः। तमिति तच्छब्दो यच्छब्दप्रतिसम्बन्ध्यपि उक्तानुक्तानन्तकल्याणगुणविशिष्टत्वेन श्रुतिप्रसिद्धिमप्यभिधत्ते। एवं दुर्लभस्यापि सौलभ्यमाह। नीलाचलवासिनमिति - करुणया नीलाद्राविर्भूत मित्यर्थः। कुत इत्यत्राह जगद्वन्दितमिति। परमपदनिलयस्तु नित्यमुक्तैकवन्दनार्हः, न तु लीलाविभूतिजनानाम् अतस्तानपि सेवया कृतार्थयितुं नीलाद्रावाविर्भूत इति भावः। यदुपतिमिति - करुणया यदुकुलेऽवतीर्य दीनाननेकानवतो भगवतो ममैकस्यावनं कियदिति भावः। यदुपतिमित्यनेन देवतान्तरव्यावृत्तिरप्यभिप्रेता। एष नारायणः श्रीमान् क्षीरार्णवनिकेतनः नागपर्य्यंकमुत्सृज्यागतो मथुरां पुरीं नारायणे नन्दकुलं प्रविष्टे इति नारायणस्यैव हि यदुकुलेऽवतारः स्मर्यते। वन्दे इति वन्दनमात्रमेव दासकृत्यं, रक्षणन्तु स्वामिकृत्यमेवेति भावः। इतः प्रभृत्यष्टश्लोक्यां

---

१. तैत्तिरीय उपनिषद् २.६

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

शार्दूलविक्रीडितं छन्दः। सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगरवः शार्दूलविक्रीडितमिति तल्लक्षणाद्।

यं सिद्धा मुनयः सुरासुरगणा गन्धर्वयक्षोरगा
सेशानाः सचतुर्मुखाः प्रतिदिनं ध्यायन्ति शं प्राप्तये।
विज्ञानेन विरागयोगतपसा जानन्ति किञ्चित् पदं
तन्नीलाचलवासिनं यदुपतिं वन्दे जगद्वन्दितम्।।२।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यं सिद्धाः मुनयः सरासुराणां गणाः ईशानेन सहिताः चतुर्मुखेण सहिताः गन्धर्वाः यक्षाः उरगाः प्रतिदिनं शं प्राप्तये ध्यायन्ति। विज्ञानेन विरागेण योगेन तपसा किञ्चित् पदं जानन्ति। तं नीलाचलवासिनं जगता वन्दितं यदुपतिं वन्दे।

भाषार्थ— सिद्ध, मुनि तथा रुद्र एवं ब्रह्मा के साथ सुर, असुर लोग तथा साथ ही गन्धर्व यक्ष एवं नाग इत्यादि प्रतिदिन शान्ति की प्राप्ति के लिये जिसका ध्यान करते हैं। विज्ञान, वैराग्य, योग तथा तपस्या से लोग जिसके कुछ ही स्वरूप को जानते हैं। उन नीलाचल में निवास करने वाले, सम्पूर्ण विश्व के द्वारा वन्दित यदुपति की मै वन्दना करता हूँ।।२।।

विवृत्तिः— यं सिद्धा इति - ब्रह्मरुद्रादिसहिताः सुरासुरगणाः सिद्धमुनिप्रभृतयश्च शं प्राप्तये स्व स्व सुखावाप्त्यर्थं प्रतिदिनं ध्यायन्ति ध्यानमेव कुर्वन्ति न तु साक्षात्कर्तुं प्रभवन्तीत्यर्थः। एतेन तत्साक्षात्कारस्याति दुर्लभत्वं सूचितम्। ये हि ध्यातुं समर्था ब्रह्मरुद्रादयस्तान् ध्यानोपायेन शं प्रापयति। ये तु ध्यातुमसमर्था अस्मदादय उपायशून्यास्तानपि स्वयमेव शं प्रापयितुं नीलाद्रावाविर्भूतमिति वाचामगोचरं तस्य कारुण्यमिति गूढाभिप्रायः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

युगकोटिसहस्राणि विष्णुमाराध्य पद्मभूः। पुनस्त्रैलोक्यधातृत्वं प्राप्तवानिति शुश्रुम। पद्मे दिव्येऽर्कसंकाशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि। प्राजापत्यं त्वया कर्म सर्वं मयि निवेशितम्। सोऽहं संन्यस्तभारो हि त्वामुपासे जगत्पतिम्। महादेवः सर्वमेधे महात्मा हुत्वात्मानं देवदेवो बभूव। विश्वान् लोकान् व्याप्य विष्टभ्यकीर्त्या विराजते द्युतिमानकृत्तिवासाः। सर्वे देवा वासुदेवं भजन्ते सर्वे देवाः वासुदेवं नमन्ते। सब्रह्मकाः सरुद्राश्च सेन्द्रा देवा महर्षयः। अर्चयन्ति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं हरिमित्यादि वचनशतमत्रानुसन्धेयम्। विज्ञानेनेत्यादि-विज्ञानं विशिष्टं ज्ञानं विवेकादिसाधनसप्तकानगृहीतं भक्तिरूपापन्नज्ञानं विरागो विषयवैतृष्ण्यं योगः अनभिसंहितफलकर्मानुष्ठानरूपः कर्मयोगः तपः कृच्छ्रचान्द्रायणादिकं ज्ञानयोगश्च, तपः शब्दस्य ज्ञानवाचित्वात्। विज्ञानस्य विरागयोगतपसां च साक्षात् परम्परोपायत्वाभिप्रायेण व्यस्तनिर्देशः। विज्ञानेनेत्यादि-करणोपादानात् कर्तृवाचकं पदमाक्षिप्यते। करणवतामेव कर्तृत्वात् सिद्धा इत्यादिकं वात्रानुषञ्जनीयम्। यमित्यनुषक्तं षष्ठ्या विपरिणम्यते। पद्यते प्राप्यते इति पदमिति व्युत्पत्त्या पदशब्दः स्वरूपरूपगुणादिवाची। उक्तैरुपायैर्यस्य पदं स्वरूपादिकं किंचिदेव जानन्ति विज्ञानिप्रभृतय इत्यर्थः। विज्ञानादिसाधनसम्पन्ना अपि किंचिदेव जानन्ति, न तु कात्स्न्र्येन। वयं तु सकलसाधनहीनाः कथं ज्ञातुं समर्था अतस्स्वयमस्मान् स्वीकरोत्विति भावः। अत्र 'यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः। अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्।[१] यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।[२] इषुक्षयान्निवर्तन्ते नान्तरिक्ष-क्षितिक्षयात् प्रतिक्षयान्निवर्तन्ते न

---

१. केन उपनिषद् २.३

२. तैत्तिरीय उपनिषद् २.४.१

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

*गोविन्दगुणक्षयात्। नान्तं गुणानां गच्छन्ति तेनानन्तोऽयमुच्यते। चिन्तयन्तो हि यं नित्यं ब्रह्मेशानादयः प्रभुं निश्चयं नाधिगच्छन्ति तमस्मि शरणं गत*इत्यादिकमनुसन्धेयम्। तन्नीलाचलवासिनमित्यादेः पूर्ववदर्थः।

यः पूर्वं जगतामनादिरमलोऽनन्तः परो मध्यगः।
स्त्रष्टा गोपयिता कटाक्षकलया हंता नियन्ता विभुः।
यो धाता ध्रुवधर्मधारकनृणां शश्वद्विहर्ता स्वदृक्।
तन्नीलाचलवासिनं यदुपतिं वन्दे जगद्वन्दितम्।।३।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यः जगतां पूर्वम् (आसीत्)। (यः) अनादिः अमलः अनन्तः परः मध्यगः (यः) विभुः कटाक्षकलया स्त्रष्टा, गोपयिता, हन्ता, नियन्ता। ध्रुवाः ये धर्माः तेषां धारकाणां नृणां यो धाता। (यः) स्वदृक् शश्वद् विहर्ता। तं नीलाचलवासिनं जगता वन्दितं यदुपतिं वन्दे।

भाषार्थ— जो जगत् से पहले वर्तमान था। जो अनादि, निर्मल, अनन्त तथा मध्य स्थिति सीमा से शून्य है। जो सर्वव्यापक अपने ईषत् कटाक्ष से सृजन, संरक्षण, विनाश तथा नियमन करने वाला है। जो सुनिश्चित धर्म का धारण करने वाले मनुष्यों का पोषक है। जो स्वयं सब कुछ साक्षात् करने वाला ईश्वर सदा अनायास पूर्वक यह सृष्टि आदि करता है। उन नीलाचल में निवास करने वाले विश्व के द्वारा वन्दित यदुपति की मै वन्दना करता हूँ।।३।।

विवृत्तिः— यः पूर्वमिति - अत्र यो जगतां पूर्वमिति नान्वयः। पुल्लिंगयच्छब्दसामानाधिकरण्येन पूर्वशब्दस्य पुंस्त्वापत्तेः। उद्देश्यविधेयभावस्थले समानलिंगकस्यातन्त्रत्वेन सामान्यविवक्षया

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सामान्येन नपुंसकत्वमिति वा। नपुंसकत्वोपपत्तावपि पूर्वशब्दस्य दिक्शब्दत्वेन, जगच्छब्दाद् दिग्योगलक्षणपञ्चम्यापत्तेः। न च सम्बन्धसामान्यविवक्षया षष्ठीति युक्तम्। उपपदविभक्तीनां षष्ठ्यपवादत्वसिद्धान्तात्। तस्मादेवमर्थः— आसीदित्यध्याहार्यम्। पूर्वशब्दः पूर्वकालिकपरः सत्तारूपक्रियाविशेषणम्, अतो द्वितीया। जगच्छब्दश्च स्थूलचिदचिद्विशिष्टपरः। सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टत्वरूप-पूर्वकालिकसत्तान्वयि सम्बन्धवाचिनी वा तादृश सत्ताविशिष्टय-च्छब्दोन्वयि सम्बन्धवाचिनी वा जगच्छब्दात् षष्ठी। न च सदेव सौम्येदमग्र आसीदितिवत् सामानाधिकरण्यप्रसंगः शंकनीयः, सत्तारूपक्रियायामाधाराधेयभावसम्बन्धेनान्वय एव सामानाधिकरण्यप्रसंगात्। यूपाय दार्वासीत्, घटाय मृत्पिण्ड आसीदित्यत्रेव स्थूलचिदचिद्विशिष्टार्थत्वरूपतादर्थ्यविवक्षया जगते य आसीदिति तादर्थ्यचतुर्थ्या बाधकाभावेन तादर्थ्यस्यैव सम्बन्धत्वविवक्षया षष्ठ्या अपि दुरपह्नवत्वात्। दृष्टा च तादर्थ्यस्यैव सम्बन्धत्वविवक्षया नम इत्यादौ षष्ठी। तथा च स्थूलचिदचिद्विशिष्टजगत्सम्बन्धिनी तत्प्रयोजनिकाया पूर्वकालिकी सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टत्वरूपा सत्ता तदाश्रयो यः इति वा तादृशसत्ताविशिष्टो यो जगत्सम्बधी तत्प्रयोजनक इति वा पर्यवसितार्थः। अनेनोपादानकारणत्वं सिद्धम्। श्रूयते च *'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्*[१]*'* *'ब्रह्मवनं ब्रह्मसदृक्ष आसीत्*[२]*'*, *'यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः*[३]*'* *'तदात्मानं स्वयमकुरुत*[४]*'* इत्यादि सूत्रितं च। प्रकृतिश्च

---

१. छान्दोग्य उपनिषद् ६/२/१
२. तैत्तिरीय ब्राह्मण २/८/९/६
३. ऋग्वेद १०/३१/७
४. तैत्तिरीय उपनिषद् २/७/१

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुरोधादिति। ननु जगत्कारणस्य नीलाद्रिवासिनः किं कारणमित्यत आह - अनादिरिति। आदिरुत्पत्तिस्तच्छून्य इत्यर्थः। तथा च श्रुतिः '*स कारणं कारणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः*'[1] इत्यादिः। जनिता जनयितेत्यर्थः। अत एव नाशोऽपि नेत्याह। अनन्त इति अन्तो नाशस्तच्छून्य इत्यर्थः। अनादिभावस्य नाशासम्भवादिति भावः। श्रूयते हि तदव्ययम्। अत एव मध्यगश्च सृष्टिकालरूपो मध्यकालोऽत्र मध्यशब्दार्थः। आद्यन्तशून्यत्वेन पूर्वापरकालावस्थायिनो मध्यकालवृत्तित्वमपि नियतमिति भावः। एतेन कालापरिच्छेदश्च सिद्धः। यद्वा एकदेशवर्तिनो नीलाद्रिनायकस्य कृत्स्नजगदुपादानत्वं कथं घटत इत्याह-अनादिरनन्तो मध्यग इति। आद्यन्तमध्यशून्य इत्यर्थः। अपरिच्छिन्न इति यावत्। श्रूयते हि अभिविमानमप्रमेयं सर्वव्यापीत्यादि स्मर्यते। नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामीति। अपरिच्छिन्नत्वेन कृत्स्नजगदुपादानत्वं संघटत एवेति भावः। ननु नीलाद्रिवासिनो जगदुपादानत्वे तद्गतापुरुषार्थविकारादिदोषाश्रयत्वं तस्य प्रसज्यत इत्यत्राह-अमल इति। मलं सुखदुःखाद्यपुरुषार्थविकाररूपं तच्छून्य इत्यर्थः। तथा च श्रूयते 'निरवद्यं निरञ्जनमि'[2] त्यादि। कुत इत्यत आह-पर इति। चिदचिद्भ्यां विलक्षणस्तच्छरीरीत्यर्थः। तथा च चिदचिद्गता अपुरुषार्थविकारादयो दोषा न शरीरिणि परमात्मनि प्रसज्यन्ते। यथा शरीरगता बालत्वयुवत्वादयो न प्रत्यगात्मनीति भावः। आह च सूत्रकारः- *न स्थानतोऽपि परस्यो भयलिगं सर्वत्र हीति*[3]। ननु लोके

---

१. श्वेताश्वतर उपनिषद् ६.९ २. श्वेताश्वतर उपनिषद् ६.१९
३. ब्रह्मसूत्रम् ३.२.११

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

उपादानान्निमित्तादेर्भेददर्शनात् प्रकृतेऽप्युपादानान्नीलाद्रिवासिनोऽन्येनैव निमित्तादिना भाव्यमित्यैश्वर्यस्य न्यूनताप्रसंग इत्याशंक्य निमित्तादिकारणमपि स एवेत्याह - स्रष्टेत्यादिना। सृष्टिकर्ताऽपि स एवेत्यर्थः। सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टवेषेणोपादानत्वं संकल्पविशिष्टवेषेण निमित्तत्वमित्याकारभेदेनोभयविधकारणत्वमप्येकस्य नीलाद्रिवासिनो युज्यत एवेति भावः। तथा च श्रूयते - *तदैक्षत सोऽकामयते*[१] *त्यादि।* रक्षकोऽपि स एवेत्याह-गोपयितेति। गोपो रक्षणं भावे घञ्, तस्मात्तत्करोतीति णिजन्तात्तृच्। यद्वा निवृत्तप्रेषणाद् गुपेर्हेतुमण्णिजन्तात्तृच्। आयादय आर्धधातुके वेति विकल्पानुशासनादायाभावः। गोप्तेत्यर्थः। तथा च श्रूयते *येन जातानि जीवन्ती*[२] त्यादि। कटाक्षकलयेति-ईषत्कटाक्षेणेत्यर्थः। एतच्च पूर्वत्र परत्र चाप्यन्वेति। देहलीदीपन्यायेनोभयत्रान्वयायैव हि मध्य उपादानम्। ईषत्कटाक्षेणैव सृष्टिरक्षाकर्तेत्यर्थः। हन्तेति-कटाक्षकलयैव संहृतिकर्तापीत्यर्थः। तथा च श्रुतिः- *'यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते चे*[३] *त्यादिः*। नियन्तेति-नियमनकर्ताऽपि स एवेत्यर्थः। तथा च श्रूयते-क्षरात्मानावीशते देव एक इति। न केवलं राजादिवत्तत्स्थसन्नियन्ता अपि त्वन्तः प्रविष्ट इत्यभिप्रयन्नाह-विभुरिति-सर्वव्यापक इत्यर्थः। अन्तः प्रविश्य नियन्तेति पर्यवसितोऽर्थः। तथा च श्रूयते *अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानामिति*। अनेन शरीरात्माभावश्च सिद्धः। अन्तः प्रविश्य नियन्तृत्वमेवास्यात्मत्वम्। अनेन च वस्त्वपरिच्छेदः फलितः। शरीरात्मभावनिबन्धनसर्ववस्तु-

---

१. छान्दोग्य उपनिषद् ६.२.३ २. तैत्तिरीय उपनिषद् ३.१.१
३. मुण्डकोपनिषद् १.१.७

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सामानाधिकरण्यार्हत्वमेव हि वस्त्वपरिच्छेदः। देशकालापरिच्छेदौ च पूर्वमुक्तौ, देशापरिच्छेदश्चात्रापि। एवं च त्रिविधपरिच्छेद-राहित्यलक्षणं श्रुत्युक्तमानन्त्यं नीलाचलपतेरेवेति भावः। य इत्यादि-ध्रुवधर्मधारकनृणाम्- ध्रुवाः स्थिराः फलद्वारा स्थैर्यं, स्थिरफला इति यावत्। तादृशा ये धर्माः भगवद्धर्माः भगवद्धर्माणामेव स्थिरफलत्वम्, इतरेषामस्थिरफलत्वं च श्रूयते। तद्य इत्थं विदुर्ये च मे रण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते, तेऽर्चिषमभिसम्भवन्ति। एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते। *तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते। अन्तवदेवास्य तद्भवती*[१] *त्यादिश्रुतिषु स्मर्यते च। क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणं क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम्'*[२] *'गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः, अद्याापि न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तका*[३] *', 'अन्तवत्तु फलं तेषां तद् भवत्यल्पमेधसा*[४]*, मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतं', 'नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः*[५]*, आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन, मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते*[६] *''*इत्यादि स्मृतिषु तद्धारका ये नराः तदेकनिष्ठाः क्षणमात्रमपि स्ववियोगमसहमानास्साधवः तेषां शश्वत् पुनः पुनः यो धाता तद्विरोधिनिरसनेन चाराध्यस्वरूपप्रदर्शनेन च यः पोषक इत्यर्थः।

---

१. छान्दोग्य उपनिषद् ८.१.६ २. गरुड़ पुराण २३२वाँ अध्याय

३. यह वचन जैन आचार्य पद्मन्दी के इस श्लोक से तुलनीय है—

गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः।
अद्यापि न निवर्तन्ते त्वलोकाकाशमागताः।

४. भगवद्गीता ७.२३ ५. भगवद्गीता ८.१५

६. भगवद्गीता ८.१६

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तथा चागायि तेनैव - *'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे*[१] 'इत्यादि। यादृशस्वभावत्वेन श्रुतिप्रसिद्धः, अवतारदशायामपि तादृशस्वभाव एवेति पुनरपि यच्छब्दोपादानस्याभिप्रायः। गीयते हि- 'प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममाययेति[२] लोके अनवाप्तकामानामेव घटपटादिसृष्ट्यादिकर्तृत्वदर्शनाज्जगत्-सृष्ट्यादिकर्तुर्जगन्नायकस्याप्य-नवाप्तप्रसंगमाशंक्याह विहर्तेति। शश्वदित्यत्रापि सम्बध्यते। लीलारूपजगत्सृष्ट्यादिककर्तेत्यर्थः। यथा लोके समवाप्तसमस्तकामा अपि महाराजप्रभृतयो लीलार्थमेव मृगयाक्षदेवनादिव्यापारेषु प्रवर्तन्ते तथा जगन्नायकोऽपि लीलार्थमेव जगत्सृष्ट्यादि व्यापारेषु प्रवर्तत इति। नैतावतानवाप्तकामत्वं तस्य प्रसज्यत इति भावः। तथा च स्मर्यते '*त्वं न्यञ्चद्भिरुदञ्चद्भिः कर्मसूत्रोपपादितैः। हरे विहरसि क्रीडाकन्दुकैरिव जन्तुभि*' रित्यादि। सूत्रं च '*लोकवत्तु लीलाकैवल्यमि*'[३]ति। सृष्ट्युपयुक्तं सार्वज्ञ्यमाह स्वदृगिति। स्वेनैव दृग्दर्शनं यस्य स तथोक्तः। अनन्याधीनसर्वविषयकसाक्षात्कार इत्यर्थः। नित्यमुक्तव्यावृत्तिरप्यनेनाभिप्रेता। तत्साक्षात्कारस्या-न्याधीनत्वात्। यद्वा स्वशब्द आत्मीयपरः। स्वेषु आत्मीयेषु भक्तेष्विति यावत्। दृक् कृपादृष्टिर्यस्य स तथोक्त इत्यर्थः। यद्वा अस्वदृगिति छेदः। असुषु प्राणेषु न विद्यते दृगक्ष्यत्वदृष्टिर्यस्य स तथोक्त इत्यर्थः। स्वप्राणरक्षणेऽपि दृष्टिमकुर्वन्नाश्रितरक्षणदीक्षित इति भावः। तथा च स्वेनैवोक्तं रामायणे आरण्यकाण्डे '*अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्। न हि प्रतिज्ञां संश्रुत्य*

१. भगवद्गीता ४.८ २. भगवद्गीता ४.७ ३. ब्रह्म सूत्रम् २.१.३३

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः इति। महाभारते च भीष्मपर्वणि '*मां समुत्कृत्य दास्यामि तवार्थे पाण्डुने*'ति। भागवते च नवमस्कन्धे चतुर्थाध्याये '*नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैस्साधुभिर्विने*'ति। तमित्यादि व्याख्यातम्।

यः स्वामी भुवनस्य यम्मुनिगणा ध्यायन्ति येनाविताः।
यस्मै देवगणा हरन्ति सुबलिं यस्माज्जगज्जायते।
यस्याभापरिपूरितं जगदिदं यस्मिंश्च तल्लीयते।
तन्नीलाचलवासिनं यदुपतिं वन्दे जगद्वन्दितम्।।४।।

सुक्षेमा— अन्वयसमासादिः— यः भुवनस्य स्वामी। येन अविताः मुनिगणाः यं ध्यायन्ति। यस्मै देवगणाः सुबलिं हरन्ति। यस्मात् जगत् जायते। इदं जगत् यस्य आभया परिपूरितम्। तत् यस्मिन् लीयते। तं नीलाचलवासिनं जगता वन्दितं यदुपतिं वन्दे।

भाषार्थ— जो विश्व का स्वामी है। जिसके द्वारा संरक्षित मुनि लोग जिसका ध्यान करते हैं। देवगण जिसके लिये (पूजारूपी) उपहार प्रदान करते हैं। जिससे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है। यह जगत् जिसकी दीप्ति से परिव्याप्त है। यह जगत् जिसमें विलीन होता है। उन नीलाचल में निवास करने वाले विश्व के द्वारा वन्दित यदुपति की मैं वन्दना करता हूँ।।४।।

विवृत्तिः— यः स्वामीति। भुवनस्य चेतनोचेतनात्मक - प्रपञ्चस्य यस्स्वामी ,स्वामित्वेन श्रुतिस्मृतिप्रसिद्धो य इत्यर्थः। तथा च श्रुति-स्मृती- 'सर्वस्याधिपतिः *पतिर्विश्वस्यानिश्वरं* स्वत्वमात्मनि संजात स्वामित्वं ब्रह्मणि स्थितमित्यादी य इत्यादि। सप्तानामपि यतां तमित्यनेनान्वयः। मुनिगणाः - मुनयो मननशीलास्तेषां गणास्समूहाः। समूहबहुत्वाभिप्रायं बहुवचनम्। मुनिषु गण्यन्ते

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

इति वा मुनिगणाः मुनिश्रेष्ठा इत्यर्थः। यं ध्यायन्ति- यद्विषयकतैलधारावदवच्छिन्नस्मृतिसन्तानवन्त इत्यर्थः। भगवद्ध्यानविच्छेदे भयाद्यनर्थप्रसंगभियेति भावः। तथा च श्रुतिस्मृती- *'यः यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति'*[१]। *'यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवो न चिन्त्यते, सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा भ्रान्तिस्सा च विक्रिये*[२]*'* त्यादयः। येनाविताः- रक्षिताः देवगणाः मनुष्यादीनामप्यु पलक्षणमेतत्। देवमनुष्यादयः सर्वेऽपि यस्मै सुबलिं शोभनां पूजारूपामुपदां हरन्ति प्रापयन्ति ददतीत्यर्थः। तथा च श्रीमद्- भागवते 'मा कंचन शुचो राजन् यदीश्वरवशं जगत्। लोकास्सयालायस्ये मे वहन्ति वलिमीशितुरि'त्यादि। यस्माज्जगज्जायते-यस्मादिति नापादाने पञ्चमी। तथा सति जनिकर्तुः प्रकृतिरित्यपादानसंज्ञया उपादानकारणत्वमात्रं सिद्ध्येन्न निमित्तकारणत्वम्। उभयविधकारणत्वं च ब्रह्मणः सकलप्रमाणसिद्धम्। अतो हेतौ पञ्चमी। अइउणिति सूत्रे विवारभेदादिति भाष्यप्रयोगसिद्धाद्विभाषा गुणेऽस्त्रियामिति सूत्रे विभाषेति योगविभागादगुणेऽपि हेतौ पञ्चमीविधानात्। तेन निमित्तोपादानोभयविधकारणत्वसिद्धिः। तथा च निमित्तोपादानभूताद्यस्मादित्यर्थः। गच्छति पूर्वपूर्वास्थाप्रहाण- पूर्वकमुत्तरोत्तरावस्थामाप्नोतीति जगच्चिदचिदात्मकप्रपञ्चो जायत इत्यर्थः। न चाचेतनस्य सततविक्रियस्य पूर्वपूर्वास्थाप्रहाणेनोत्तरोत्तरावस्थाप्राप्त्या जगच्छब्दवाच्यत्वस्य तत एव जनेश्चोपपन्नत्वेऽपि चेतनस्य विकाररहितस्य

---

१. तैत्तिरीयोपनिषद् २.७.१ २. गरुड़ पुराण ध्यान स्तुति २३४वाँ अध्याय

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सततैकरूपस्य कथं जगच्छब्दवाच्यत्वं जनिश्चोपपद्येते इति वाच्यं, स्वरूपतो विकाररहितत्वेऽपि चेतनस्य धर्मभूतज्ञानसंकोचविकासात्मकस्वभावान्यथा भावाभ्युपगमेन तदुपपत्तेः। इदं जगत् यस्याभापरिपूरितम् आभादीप्तः तया परिपूरितं परितः पूरितं सर्वतो व्याप्तमित्यर्थः। तथा च स्मर्यते-सर्वतो दीप्तिमन्तमिति। यद्वा-यस्य आभाभास्करस्य प्रभावात् यदपृथग्भूता लक्ष्मीः। अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथेत्यादि प्रमाणात् तया परिपूरितं, परितः पूरितं पालितमित्यर्थः। पृ पालनपूरणयोरिति हि धातुः। न चैवं सति लक्ष्म्या एव पालनकर्तृत्वं लभ्यते, न भगवत इति वाच्यम्-यत्सम्बन्धविशिष्टलक्ष्म्याः कर्तृतया पालनेन्वये यदर्थस्यापि भगवतः पालनेन्वयस्य व्युत्पत्तिसिद्धत्वात्। सपत्नीको यजत इत्यत्र पत्न्या अपि यागकर्तृत्वप्रतीतेः। न च यत्सम्बन्ध- विशिष्टलक्ष्म्याः पालनकर्तृत्वे यदर्थस्य भगवतो लक्ष्मीविशेषणत्वेनाप्राधान्यं प्रसज्यत इति वाच्यं— राजपुरुष इत्यत्रेव शाब्दाप्राधान्येऽपि आर्थप्राधान्यस्य दुरपह्नवत्वात्। अत्र *'आनीदवातं स्वधया तदेकं'*[१], *'लक्ष्म्या सह हृषीकेशो देव्या कारुण्यरूपया। रक्षकस्सर्वसिद्धान्ते वेदान्तेषु च गीयते'*[२], *'इयं सीता मम सुता सह धर्मचरी तवे'*[३]त्यादिश्रुतिस्मृतयोऽनुसन्धेयाः। अथवा यस्याभा प्रकाशापरपर्यायं संकल्परूपज्ञानं तच्च स्वार्थनिरपेक्षपरदुःखनिराचिकीर्षारूपं कारुण्यम्। इच्छाकृत्यादीनां ज्ञानावस्थाविशेषरूपत्वस्य सिद्धान्तसिद्धत्वात् तया परिपूरितं परिपालितमित्यर्थः। परीति पालने सर्वप्रकारत्वं

---

१. ऋग्वेद १०. १२९.　　　२.

३. बाल्मीकि रामायण बालकाण्ड ७३.२७

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

द्योतयति। येन परिपूरितमित्यस्य सुवचत्वेऽपि क्रमप्राप्तषष्ठयन्तयच्छब्दनिर्देशाय ज्ञानादिषु भगवद्गुणेषु कृपाया रक्षणैकान्तत्वेन प्राधान्यसूचनाय च यस्याभापरिपूरितमित्युक्तिः। आह च बाल्मीकिः *महर्षिः 'वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्य पालयदि' ति।* आभाशब्दस्य सापेक्षत्वेऽपि चैत्रस्य गुरुकुलमित्यत्रेव नित्यसापेक्षत्वात् समासः। उत्पत्तिलयवाक्यमध्यमस्यास्य वाक्यस्यायमेवार्थः:- स्वरस इत्यवधेयम्। तज्जगद्यस्मिन् लीयते लयमाप्नोतीत्यर्थः। लयो नाम नामरूपविभागाभावेन अर्थग्रहणराहित्येनावस्थानं, न तु स्वरूपैक्यम्। *'आभूतसम्प्लवे प्राप्ते प्रलीने प्रकृतौ महान्। एकस्तिष्ठति विश्वात्मा स तु नारायणः प्रभुरिति* प्रलयदशायामपि विश्वात्मत्वस्मरणविरोधात्, 'कक्षे लीनाः पतंगाः', 'वने लीनाः सारंगाः' इति पृथग्ग्रहणरहितावस्थाने लयशब्दप्रयोगाच्च। चशब्दश्च वाक्यावृत्त्यर्थः। एकं वाक्यं प्राकृतलयं प्रतिपादयति। अन्यच्चात्यन्तिकलयरूपमोक्षं वदति। अत्र 'यतो वा *इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म'*[१]। *कृत्स्न एव हि भूतानामुत्पत्तिरपि चाप्यय* इत्यादि श्रुतिस्मृतयोऽनुसन्धेयाः। तमित्यादि पूर्ववत्।

यन्मायापरिमोहिताः सुरगणा गन्धर्वविद्याधराः।
योगीशा ऋषयोऽसुराश्च पुरुषा ये स्थावरा जंगमाः।
जायन्ते परितो भ्रमन्ति जगति द्वन्द्वे म्रियन्ते सदा।
तन्नीलाचलवासिनं यदुपतिं वन्दे जगद्वन्दितम्।।५।।

---

१. तैत्तिरीय उपनिषद् ३.१

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुक्षेमा—अन्वयसमासादिः—सुरगणाः गन्धर्वाः विद्याधराः योगीशा ऋषयः असुराश्च ये स्थावराः जंगमाः यस्य मायया परिमोहिताः जगति जायन्ते, परितः भ्रमन्ति सदा द्वन्द्वे म्रियन्ते। तं नीलाचलवासिनं जगता वन्दितं यदुपतिं वन्दे।

भाषार्थ— देवता लोग, गन्धर्व, विद्याधर, योगियों के अधिपति, ऋषि, असुर तथा जो अचल पदार्थ तथा सचल प्राणी जिसकी माया से विमोहित होकर इस विश्व में उत्पन्न होते हैं, चारों ओर घूमते हैं तथा सदा द्वन्द्व में मरते हैं। उन नीलाचल में निवास करने वाले विश्व के द्वारा वन्दित यदुपति की मै वन्दना करता हूँ।।५।।

विवृत्तिः— यन्मायेत्यादि— सुरगणा गन्धर्व-विद्याधराः, एषां सुरत्वेऽपि गोबलीवर्दन्यायेन पृथगुक्तिः। योगीशाः सनकादयः ऋषयो वसिष्ठादयः असुराश्च-च शब्देन राक्षसाः पुरुषाः मनुजाः सामान्यविशेषोभयवाचकोऽपि पुरुषशब्दः प्रकृते विशेषपरः। किं बहुना-ये स्थावरा जंगमास्ते सर्वेऽपि यन्मायापरिमोहिताः यस्य नीलाद्रिवासिनो मायाविचित्रार्थसर्गकरी भगवत्स्वरूपतिरोधानकरी च गुणत्रयमयी प्रकृतिः। तथा च श्रुतिः- *'मायां तु प्रकृतिं विद्यादि'*[१] ति। तया परिमोहिताः अज्ञानान्यथाज्ञानाद्यनेकविधमोहं प्रापिताः सन्तः परितो जायन्ते। नानायोनिषु जन्मभाजो भवन्ति। पश्चाच्च जगति इह अदोलोकपरः। इहामुत्र च द्वन्द्वे सुखदुःखादिरूपे संसारार्णवे भ्रमन्ति, भ्रमन्त्येव न निर्गच्छन्तीत्यर्थः। म्रियन्ते- अलब्धनिर्गमोपाया एव म्रियन्ते वेत्यर्थः। सदेत्येतत्तु जन्मादीनां प्रवाहानादित्वमात्रं वदति। नोत्तरावधिराहित्यमपि। तथा सति

---

१. श्वेताश्वतर उपनिषद् ४.१०

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

भक्तिप्रपत्तिभ्यां संसारनिवृत्त्यानन्वितार्थकत्वापातात् सदा वन्द इति वान्वयः। अहमपि दुस्तरतन्मायापरिमोहितः संसारे भ्रमाम्यतस्तन्मायानिवृत्तये तमेव वन्दे नान्यमुपायमीक्षे इति भावः। तथा चोक्तं तेनैव '*दैवीत्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति त इति*[१]।

साक्षी सर्वगतः प्रभुः प्रकृतिपः सर्वेश्वरेशः सुधीर्
दिव्यैर्मंगलमूर्तिमद्गुणगणैः संसेवितोऽजस्तु यः।
वेदैश्चोपनिषद्भिरीडितयशाः सच्चिद्घनानन्दकः
तन्नीलाचलवासिनं यदुपतिं वन्दे जगद्वन्दितम्।।६।।

सुक्षेमा—अन्वयसमासादिः—साक्षी सर्वगतः प्रभुः प्रकृतिपः सर्वेषाम् ईश्वराणाम् ईशः सुधीः, दिव्यैः, मंगलाः ये मूर्तिमन्तो गुणाः तेषां गणैः संसेवितः यस्तु अजः, वेदैः उपनिषद्भिश्च ईडितं यशः यस्य सः, सन् च असौ चित् च, घनान् आनन्दकः, तं नीलाचलवासिनं जगता वन्दितं यदुपतिं वन्दे।

भाषार्थ— (जो सम्पूर्ण जगत् व्यवहार का) साक्षी, सर्वव्यापक, स्वामी, चेतन अचेतन की रक्षा करने वाला, सभी (ब्रह्मा आदि) ईश्वरों का भी ईश, सुधी, जो अजन्मा है तथा जिसका वेदों, उपनिषदों के द्वारा यश गाया गया है, जो सत् और चित् स्वरूप है, जो संसारी लोगों को आनन्द प्रदान करने वाला है। उन नीलाचल में निवास करने वाले विश्व के द्वारा वन्दित यदुपति की मै वन्दना करता हूँ।।६।।

विवृत्तिः— साक्षीत्यादि - यो नीलाद्रिवासी साक्षी कृत्स्नस्य जगतस्साक्षाद् द्रष्टा। 'साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायामिति पाणिनिः। श्रूयते

---

१. भगवद्गीता ७.१४

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

हि '*साक्षी चेता केवल*[१]', इत्यादि। सर्वगतः- सर्वं गतं यस्मिन् स इति वा सर्वं गत इति वा सर्वगतः। '*एतस्मिन् खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्च*[२]', '*मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव*[३]। *सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा*[४]। *सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः। ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते*[५] इत्यादिकमुभयत्र मानम्। प्रभुः स्वामी समर्थ इति वा। '*महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्वस्यैव प्रवर्तक*[६] इति हि श्रूयते। प्रकृतिपः— प्रकृतिशब्देन चेतनाचेतनमुच्यते। '*भूमिरापोऽनिलं वायुःखं मनो बुद्धिरेव च। अहंकार इतीयम्मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा*[७]', '*अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्*[८]। जीवभूतां महाबाहो इत्युभयोरपि प्रकृतिशब्देनाभिधानात्। विकारात् प्रकरोत्याभ्यामिति प्रकृतीत्यपादाने क्तिन्नन्तस्य प्रकृतिशब्दस्य उभयवाचकत्वोपपत्तेश्च। तथा च प्रकृतिं चेतना- चेतनात्मकं कृत्स्नं जगत् पातीति प्रकृतिपः। आतश्चेति कः। एष भूतपालः स एव पातीत्यादि श्रुतिस्मृतयोऽत्रानुसन्धेयाः। यद्वा जगद्रक्षणं प्रकर्षेण करोत्यनयेति प्रकृतिः। *क्लमातपात्* पाति जगदिति स तथोक्तः। यद्वा प्रकृत्या स्वभावेन पातीति सः। जगद्रक्षकत्वस्वभाववानित्यर्थः। सर्वेश्वरेशः सर्वेश्वरा ये ब्रह्मादयः तेषामीशः। '*तमीश्वराणां परमं महेश्वरमि*[९]' ति श्रुतिरत्र मानम्। सुष्ठु ध्यायतीति सुधीः। स्वाश्रितकृतस्वोपकारचिन्तनपर इत्यर्थः। नातः साक्षीत्यनेन पुनरुक्तिः।

---

१. श्वेतश्वतर उपनिषद् ६.११
२. बृहदारण्यक उपनिषद् ३.८.११
३. भगवद् गीता ७.७
४. श्वेताश्वतर उपनिषद् ६.११
५. विष्णु पुराण १.२.१२
६. श्वेताश्वतर उपनिषद् ३.१२
७. भगवद्गीता ७.४
८. भगवद्गीता ७.५
९. श्वेताश्वतर उपनिषद् ६.७

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

गोविन्देति यदा क्रन्दत् कृष्णां मां दूरवासिनं। ऋणप्रवृद्धमिव मे हृदयान्नापसर्पतीत्यादिकमत्र मानम्। दिव्यैरप्राकृतैर्मंगलमूर्तिमद्गुणगणैः- मंगलाः शुभतराः मूर्तिमन्तो मूर्तिमन्त इव प्रकटाः ये गुणादयो वात्सल्यादयः तद्गुणैः संसेवितः सम्यगाश्रितः. आश्रयणे सम्यक्त्वं च कदाचिदपि विश्लेषराहित्यम्। संसेवित इत्यनेन गुणा एव स्वातिशयार्थं भगवन्तमाश्रिताः। न तु तदाहिताशयो भगवानिति सूच्यते। तदुक्तमभियुक्तैः— *'गुणायत्तं लोके गुणिनि हि मत्तं मंगलपदम् विपर्यस्तं हस्तिक्षिति धरयते तत्त्वपि पुनः। गुणाः सत्यज्ञानप्रभृतय उत त्वद्गततया। शुभीभूयं याता इति हि निरणैष्म श्रुतिवशादिति। तेजोबलैश्वर्यमहाजवो यः सुवीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः। समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसावित्यादिकमत्र* मानम्। यद्वा दिव्यैः दिवि परमव्योमशब्दाभिधेये वैकुण्ठे वर्तमानैः मंगलमूर्तिमद्गुणगणैः। मंगलमूर्तयः अप्राकृतशुभविग्रहाः मद्गुणाः। मदी हर्षे इत्यस्मात् क्विबन्तो मच्छब्दो हर्षवाची। मद्गुणो येषान्ते मद्गुणाः। भगवदनुभवदृष्टा इति यावत्। तादृशा ये गणाः अनन्तगरुडविष्वक्सेनादयः पार्षदगणाः तैः संसेवित इत्यर्थ। तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसस्समिन्धते[१]। बद्धाञ्जलिपुटा हृष्टा नम इत्येव वादिन इत्यादिकमत्र मानम्। अजः न जायत इत्यजः। प्रकृति-पुरुषयोरप्यजत्वात् तद्व्यावृत्त्यर्थं तुशब्दस्ताभ्यां वैलक्षण्यं द्योतयति। स्वरूपविकारकर्माधीनस्वभावविकारवद्भ्यां प्रकृतिपुरुषाभ्यां तदुभयरहितः परमपुरुषो विलक्षण इति भावः। वैदैः उपनिषदां पृथग्ग्रहणेन वेदशब्दोऽत्र वेदैस्साङ्गपदक्रमोपनिषद्भिरित्यत्र

---

१. ऋग्वेद १.२२.२१

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

गोबलीवर्दन्यायेन पूर्वभागपरः। चशब्दो भिन्नक्रमः। उपनिषद्भिश्च ईडितयशाः स्तुतप्रभावः पूर्वोत्तरकाण्डयोः सद्वारकाद्वारकभगवत् प्रतिपादकत्व-रूपविशेषाभिप्रायं पृथग्ग्रहणम्। *'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति*[१]*'*, *'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य'* इत्यादिकमत्र मानम्। सच्चित्—संश्चासौ चिच्च सच्चित्, सद्रूपश्चिद्रूपश्चेत्यर्थः। सद्रूपत्वं सततैकरूपत्वं, तेन बद्धचेतनाचेतनव्यावृत्तिः। चिद्रूपत्वम् ्संकुचितज्ञानैकाकारत्वं, तेन मुक्तव्यावृत्तिः। *'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मे*[२]*'ति* श्रुतिरत्र मानम्। घनानन्दकः- मूर्तौ घन इति स्मरणाद्यस्य कर्मनिमित्तं देहित्वं स घनशब्देनोच्यते। घनान् संसारिण आनन्दयति सांसारिकसुखनिवर्तनपूर्वकनिरतिशयानन्दरूपं मोक्षं च प्रापयतीति स घनानन्दकः सकलपुरुषार्थप्रदातेति यावत्। अनेन नित्यव्यावृत्तिः। *को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयती*[३]*'*त्यादिकमत्र मानम्। शेषं पूर्ववत्।

यः पातालपदो महीकटितटः स्वर्ल्लोकशीर्षोऽस्ति यो।
मार्तण्डेक्षणदिक्श्रुतिः श्रुतिमुखो गीर्वाणबाहुः कधीः।
मायाक्रीडनको जगद्वपुरजो हीनो ह्यदिव्यैर्गुणैस्
तन्नीलाचलवासिनं यदुपतिं वन्दे जगद्वन्दितम्।।७।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यः पातालं पदे यस्य सः, मही कटितटं यस्य सः, स्वर्लोकः शीर्षं यस्य सः, अस्ति। यः मार्तण्डः ईक्षणं यस्य सः तथा च दिशः श्रुती यस्य सः, श्रुतयः मुखं यस्य सः, गीर्वाणाः बाहवो यस्य सः, कः धीः यस्य सः, माया क्रीडनकं यस्य सः, जगत् वपुः यस्य सः अदिव्यैः गुणैः हीनः अजः, तं नीलाचलवासिनं जगता वन्दितं यदुपतिं वन्दे।

---

१. कठो. २.१५ २. तैत्तिरीयो. २.१.१ ३. तैत्तिरीयो. २.६

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Tru

भाषार्थ— अधोभुवन जिसके चरण हैं, भूलोक जिसकी कमर हैं, स्वर्गलोक जिसका सिर है, सूर्य जिसकी आँखें हैं, दिशाएँ जिसके श्रोत्र हैं, वेद जिसके मुख हैं, लोकपाल देवगण जिसकी भुजाएँ हैं, ब्रह्मा जिसकी बुद्धि है,, यह तीन गुणों वाली प्रकृति जिसकी लीला का खिलौना है, यह जगत् जिसका शरीर है, जो प्राकृत गुणों से हीन है, अतएव अजन्मा है। उन नीलाचल में निवास करने वाले विश्व के द्वारा वन्दित यदुपति की मै वन्दना करता हूँ।

अनुशीलन— यह सम्पूर्ण जगत् ईश्वर की ही विभिन्न शक्तियों का विस्तार है। इस भावना से प्रेरित होकर यहाँ विश्वरूप ईश्वर की कल्पना की गई है। यह भावना ऋग्वेद के पुरुष सूक्त से ही चली आई है। जहाँ ईश्वर को विराट् पुरुष के रूप में प्रकट किया गया है। ऋग्वेद १०/९०/१३-१४ के 'चक्षो: सूर्यो अजायत' , 'दिश: श्रोत्रात् (ईश्वर के चक्षु से सूर्य तथा श्रोत्र से दिशाएँ उत्पन्न हुईं) इन वचनों की प्रस्तुत श्लोक 'मार्तण्डेक्षणदिक्श्रुति:' से सर्वथा तुलना की जा सकती है।

श्रीमदभागवत के दूसरे स्कन्ध प्रथम अध्याय के २३ से ३९ श्लोक तक यह विश्वरूप वर्णन बड़े विस्तार से प्राप्त हुआ है।।७।।

विवृत्तिः— विश्वरूपत्वेन स्तौति-य: पातालेत्यादि। पातालपद: पातालमधोभुवनं पदे अन्तौ यस्य स:। महीकटितट: मही भूलोक: कटितटं यस्य स:। स्वर्ल्लोकशीर्ष: स्वर्ल्लोक: स्वर्गलोक: शीर्षं शिरो यस्य स:। मार्तण्डेक्षणदिक्श्रुति: मार्तण्ड: सूर्य ईक्षणं चक्षुर्यस्य। दिश: श्रुती श्रोत्रे यस्य स चासौ स च तथोक्त:। श्रुतिमुख: श्रुतयो वेदा: मुखं यस्य स:। गीर्वाणबाहु: गीर्वाणा: लोकपाला: सुरा बाहवो यस्य स:। कधी: क: ब्रह्मा धीर्बुद्धि: यस्य स:, ब्रह्मणो बुद्ध्यभिमानित्वात्। तत्त्वेन रूपेण मायाक्रीडनक:।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

माया गुणत्रयमयी प्रकृतिः क्रीडनकं लीलोपकरणं यस्य सः। जगद्वपुः जगच्छरीरकः। भगवतो जगच्छरीरकत्वं स्वाभाविकं, न जीवस्येव कर्मकृतमित्याह अज इति-कर्माधीनोत्पत्तिरहित इत्यर्थः। अत्र हेतुमाह - हीन इत्यादि। हिर्हेतौ।

यतः अदिव्यैः दिव्यभिन्नैः प्राकृतैर्गुणैर्हीनः ततोऽज इत्यर्थः। भगवतो गुणत्रयवश्य त्वाभावेन तद्धेतुककर्माभाववान्न तदधीनोत्पत्तिरिति भावः। अदिव्यगुणनिषेधो हि दिव्यगुणसद्भावं द्योतयति। एवंभूतो योऽस्ति यः प्रसिद्धोऽस्ति। एको यच्छब्दः श्रौतीं प्रसिद्धिं द्योतयति, अपरश्च स्मार्तीमित्युभयोरर्थवत्वम्। तमित्यादि पूर्ववत्। अत्र पातालमेतस्य हि पादमूलमित्यादि श्रीमद्भागवते द्रष्टव्यम्[१]।

यच्छक्त्या हरते हरो विधिरपि स्रष्टा च शास्ता यमो।
वह्निर्दाहयते शशी सुखयते मेघा विमुञ्चन्ति कम्।
मृत्युर्नाशयते मही फलयते वायुः प्रवात्यञ्जसा।
तन्नीलाचलवासिनं यदुपतिं वन्दे जगद्वन्दितम्।।८।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यस्य शक्त्या हरः हरते, विधिः अपि स्रष्टा, यमः शास्ता, वह्निः दाहयते, शशी सुखयते, मेघाः कं विमुञ्चन्ति, मृत्युः नाशयते, मही फलयते, वायुः अञ्जसा प्रवाति, तं नीलाचलवासिनं जगता वन्दितं यदुपतिं वन्दे।

भाषार्थ— जिसकी शक्ति से रुद्र (जगत् का) संहार करता है, ब्रह्मा सृष्टि करता है, यम शासन करता है, अग्नि दहन करती है, चन्द्रमा सुख प्रदान करता है, मेघ जल वर्षण करते हैं, मृत्यु विनाश करता है, धरती फल प्रदान करती है, हवा अनायास चलती है। उन नीलाचल

---

१. श्रीमद् भागवत २.१.२६

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

में निवास करने वाले विश्व के द्वारा वन्दित यदुपति की मै वन्दना करता हूँ।।८।।

विवृत्तिः— यच्छक्त्येत्यादि। हरो रुद्रः यच्छक्त्या यद्दत्तया शक्त्या यस्य शासकत्वशक्त्या च हरते जगदिति शेषः। जगत् संहरते इत्यर्थः। यच्छक्त्येति सर्वेष्वप्युत्तरवाक्येष्वन्वेति। विधिरपि चतुर्मुखोऽपि, स्रष्टा जगत् सृष्टिकर्तेत्यर्थः। अपिशब्दो दक्षादि समुच्चायकः। च शब्दोऽनुक्तवाक्यार्थं समुच्चिनोति-स्वयमेव पालयितेत्यर्थः। यमो धर्मराजः शास्ता पापिनां शिक्षकः। वह्निः दाहयते दहति काष्ठादिकं भस्मीकुरुत इत्यर्थः। दाहशब्दात्तत्करोतीति णिच्। शशी चन्द्रः सुखयते, जनान् सुखवन्तः करोति। सुखवच्छब्दात् तत्करोतीति णिचि इष्ठवद्भावात् विन्मतोर्लुगिति मतुपो लुक्। मेघाः कं जलं विमुञ्चन्ति वर्षन्तीत्यर्थः। मृत्युर्नाशयते नाशो मरणं तत्प्रयोजक इत्यर्थः। मही फलयते फलं कुरुते, फलतीति यावत्। यद्वा बीजादीनि फलवन्ति कुरुते इत्यर्थः। फलवच्छब्दाद्वा करोतीत्यर्थे णिच्। वायुः प्रवाति स्पष्टम्। तमित्यादि एवम्भूतं सर्वनियन्तारं परमात्मानं कृपया नीलाद्राविर्भूतम् अञ्जसा अनायासेन वन्दे इत्यर्थः। अत्र भगवदाज्ञानुवृत्तिप्रयोज्यप्रत्यवायानुत्पत्तिफलस्य कर्तृगामित्वेन हरत इत्यादौ स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले, णिचश्चेत्यात्मनेपदम्। मुञ्चतिवात्योः स्वरितञित्वाभावान्नात्मनेपदम्। अत्र *'भीषास्मात् वातः पवते भीषोदेति सूर्यः भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः*[१]', *'एतौ द्वौ विबुध श्रेष्ठौ प्रसादक्रोधजौ स्मृतौ तदा दर्शितपन्थानौ सृष्टि संहारकार*कावित्यादि प्रमाणशतमनुसन्धेयम्।

१. तैत्तिरीय उपनिषद् २.८.१

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यत्पादपंकजपरागविमिश्रतोयं
ब्रह्माण्डमण्डलमखण्डलमाविरंचेः ।
तं वान्तमाशु हि पुनाति नभेदभावं
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।९।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यस्य पादपंकजस्य परागेण विमिश्रं तोयम्, आविरंचेः वान्तम् अखण्डलं ब्रह्माण्डमण्डलम् आशु नभेदभावं पुनाति। पतितपावनः नामधेयः यस्य तं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— जिसके चरणकमल की धूलि से गंगाजल मिश्रित है। जो चतुर्मुख ब्रह्मा से लेकर चींटी तक समस्त ब्रह्माण्ड समूह को शीघ्र ही सर्वथा भेदबुद्धि के बिना पवित्र करता है। उन 'पतित पावन' नाम वाले प्रभु की मै वन्दना करता हूँ।।९।।

विवृत्तिः— यत्पादेति— यस्य नीलाद्रिनायकस्य पादपंकजं परागेण चरणारविन्दधूल्या विमिश्रं तोयं गंगारूपम् आविरंचेः चतुर्मुखमभिव्याप्य वान्तं पिपीलिकापर्यन्तम् अखण्डलं कृत्स्नं ब्रह्माण्डमण्डलं ब्रह्माण्डसमूहम्, नभेदभावं भेदभावो-भेदभावना भेदबुद्धिरिति यावत्। न विद्यते भेदभावो यस्मिन् तन्न भेदभावम्। नैकादिशब्दवन्नशब्देन समासः। नातो नकारलोपः। क्रियाविशेषणमेतत्। अयं पवनीयो, नायं पवनीय इति भेदबुद्धिं विहायेति यावत्। आशुः शीघ्रं दर्शनस्पर्शनाद्यनन्तरक्षणे एव पुनाति पवित्रं करोति इत्यर्थः। हि शब्दोऽस्यार्थस्य भारतरामायणादिषु पिपीलिकासगरपुत्रादिवृत्तान्ते प्रसिद्धिं द्योतयति। पतितपावननामधेयम्— पतितान् अतिपापिनः, पुनानानि गंगादीन्यपि प्रयोजयतीति पतितपावनः। यद्वा पतितान् पावयति पुनातीति पतितपावनः। निवृत्तप्रेषणाद् धातोर्णिजन्तात् ...

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

कर्तरि ल्युट् बाहुलकः। नन्दिग्रहीति ल्युर्वा। पतितपावन इति नामधेयम्-योगरूढं नाम यस्य तथोक्तम्। तं प्रभुं नीलाद्रिनायकं वन्दे स्तौमीत्यर्थः। इत आरभ्य पञ्चत्रिंशच्छ्लोक्यां वसन्ततिलका छन्दः। प्रोक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग इति तल्लक्षणात्।

यत्पादपंकजजलं चतुराननोऽसौ
शुद्ध्यै कमण्डलुमुखे सुतरां दधार।
अद्यापि मूर्धनि शिवो वहतीष्टरूपं
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।१०।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— असौ चतुराननः शुद्ध्यै यस्य पादपंकजस्य जलं कमण्डलुमुखे सुतरां दधार। शिवः अद्यापि इष्टरूपं मूर्धनि वहति। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— यह चतुर्मुख ब्रह्मा शुद्धि के लिये जिसके चरणकमल के जल को अपने कमण्डलु के मुख में भली प्रकार धारण करता है। शिव आज भी जिसके उस इष्ट स्वरूप को अपने सिरं पर रखते हैं। उन 'पतितपावन' नाम वाले प्रभु की मै वन्दना करता हूँ।

विवृत्तिः— यत्पादेत्यादि। यत्पादपंकजजलं = त्रिविक्रमावतारे यच्चरणारविन्दप्रक्षालनजलम् असौ प्रसिद्धोऽपि चतुराननः सुतरां शुद्ध्यै = स्वपवित्रतायै पुनः पुनर्हृत्वा अतियूनो भूयासमित्यभि-सन्धायेति यावत्। यद्यपि सकृद्धारणेनैव सुतरां शोधयति भगवत्पादोदकं तथापि रजोगुणस्य चतुर्मुखस्य तथाभिसन्धिरिति भावः। कमण्डलुमुखे = पात्रे मुखद्वारैव स्थापनात् कमण्डलुमुख इत्युक्तिः। दधार = स्थापयामास। अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र धरतिः। इष्टरूपम् = इष्टस्वरूपम्, इष्टं रूपयति ज्ञापयतीति वा। इष्टरूपं ज्ञप्तिश्चात्रानुभवरूपा।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अनुभवश्च प्राप्तौ सत्यामेवेति इष्टप्रापकमिति पर्यवसितोऽर्थः। अथवा प्रशंसायां रूपप्। प्रशस्तमिष्टमित्यर्थः।

तादृशं यत् पादपंकजजलं शिवोऽद्यापि मूर्धनि स्वशिरसि वहति। वहतिरत्र धारणार्थो न प्रापणार्थः। वेदे प्रभुमित्यादि पूर्ववत्।

यत्पादतीर्थममलं परमादरेण
सप्तर्षयः प्रतिदिनं शिरसा वहन्ति।
विज्ञाननिर्गतमलाः सुपवित्रतायै
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।११।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यस्य पादतीर्थं, न विद्यते मलं यस्मिन् तथाभूतं, विज्ञानेन निर्गतं मलं येषां ते तथाभूताः सप्त ऋषयः सुपवित्रतायै प्रतिदिनं शिरसा वहन्ति। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— जिसके अति पवित्र सन्तारक चरणों को, विज्ञान से विनष्ट अशुद्धि वाले सातों ऋषि अपनी पवित्रता के लिये प्रतिदिन सिर से धारण करते हैं। उन 'पतितपावन' नाम वाले प्रभु की मै वन्दना करता हूँ।।११।।

विवृत्तिः— यत्पादतीर्थमिति - परम् उत्कृष्टम् अमलं न विद्यते मलं यस्मिन् यस्मादित्युभयं विवक्षितम्। स्वयमपि निर्मलमन्यानपि निर्मलीकुर्वच्चेत्यर्थः। हेतुगर्भमिदम्। अतिनिर्मलत्वाद्यत्पादतीर्थं सप्तर्षयः ज्ञाननिर्गतमलाः = ज्ञानेन ब्रह्मज्ञानेन निर्गतं = नष्टं मलं पापं येषां तथाभूता अपि सुपवित्रतायै सुष्ठु पवित्रीभवितुं भगवत्कैंकर्यप्रापकभक्ति- प्रतिबन्धकपापनिवृत्तिरूपपरमपवित्रतार्थमिति यावत्। अनेन ब्रह्मज्ञानापेक्षया भगवत्पादपाथसो नैर्मल्यातिशयावहत्वं सूच्यते। प्रतिदिनमादरेण प्रत्यहमभिवर्धमानेनादरेण अत्यादरेणेत्यर्थः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

परमादरेणेत्येकं पदं वा। परमादरेण प्रतिदिनं शिरसा वहन्ति दधतीत्यर्थः। शिरसेत्येकवचन प्रतिव्यक्त्यभिप्रायम्। वन्दे इत्यादि पूर्ववत्।

यन्नामकर्णविवरान्तरलब्धिमात्रात्
गात्राद् द्रुतं कलुषिणां सकलान्यघानि।
दन्दह्यमानतनुभिः परिनिःसरन्ति
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।१२।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यस्य नाम्नः, कर्णयोः विवरान्तरे लब्धिमात्रात् कलुषिणां सकलानि अघानि, दन्दह्यमानः तनुः येषां तथाभूतेन सता गात्राद् द्रुतं परिनिःसरन्ति। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— जिसके नाम के कानों के छिद्र में पहुँचने मात्र से पापियों के सम्पूर्ण पाप अपने ज्वलित स्वरूप वाले होने के कारण शरीर से तत्काल बाहर निकल जाते हैं। उन 'पतितपावन' नाम वाले प्रभु की मै वन्दना करता हूँ।।१२।।

विवृत्तिः— इत आरभ्य नवश्लोक्यात्रवधा भक्तिरुच्यते। तत्रादौ श्रवणरूपां भक्तिमाह-यन्नामेति-कलुषिणां-निन्दायामिनिः। अत्यन्तनिन्दितयवनानामपि यन्नामकर्णविवरान्तरलब्धिमात्रात् यस्य नीलाद्रिनायकस्य नाम्नः कर्णविवरान्तरलब्धिमात्रात् कर्णछिद्रमध्यदेशप्रवेशमात्रात् सकलान्यघानि = कृत्स्नान्यपि पापानि, दन्दह्यमानतनुभिः भृशं दह्यमानाभिः। दहेर्यङन्तात् कर्मणि शानच्। जपजभदहदशभञ्जपशां चेत्यभ्यासस्य नुगागमः। तनुभिः = स्वरूपैः वैशिष्ट्ये तृतीया। दन्दह्यमानस्वरूपाणि सन्ति, गात्रात् कलुषिणां शरीरात् द्रुतं परिनिःसरन्ति = दूरतो निर्गच्छन्तीत्यर्थः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

दन्दह्यमानतनुभिरिति हेतौ वा तृतीया। तदात्वघस्वरूपस्य निःसरणहेतुत्वाभावेऽपि सविशेषणे हीति न्यायेन स्वरूपविशेषणदाहे हेतुत्वं विश्राम्यतीत्यवसेयम्। वन्द इत्यादि पूर्ववत्। अत्र परीक्षिदादिर्दृष्टान्तः।

यन्नाम मंगलममंगलभंगकारम्
उच्चारणेन खलु पातकिनां मुखैश्च।
सद्यः पुनाति शबरान् यवनानधर्मान्
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।१३।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— मंगलं, पातकिनां मुखैः उच्चारणेन खलु अमंगलस्य भंगकारं च यस्य नाम अधर्मान् शबरान् यवनान् सद्यः पुनाति। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— मंगलस्वरूप, पापी लोगों के मुख से उच्चारणमात्र से अमंगल को नष्ट करने वाला जिसका नाम अधर्मी शबर, यवन आदि को तुरन्त पवित्र कर देता है, उन 'पतितपावन' नाम वाले प्रभु की मै वन्दना करता हूँ।।१३।।

विवृत्तिः— कीर्तनरूपां भक्तिमाह-यन्नाम मंगलमिति। मंगलं स्वयं मंगल रूपं, मंगलकारि च। मंगलशब्दात् तत्करोतीति णिजन्तात् पचाद्यच्। अत्र हेतुमाह-पातकिनां मुखैश्च। चकारो भिन्नक्रमः। अत्रापि निन्दायामिनिः। अत्यन्तनिन्दितमहापापवतामपि मुखैः उच्चारणेन खलु उच्चारणेनैव। उच्चारणमात्रस्यैव मुखहेतुकत्वात् मुखपदं व्यर्थमिति न शंक्यम्। मुखपदस्य मुखमात्रार्थकत्वेन मनःपूर्वकत्वादिव्यवच्छेदकतया सार्थक्यात्। एवार्थेन खलु नार्थज्ञानापेक्षा व्यवच्छिद्यते। अमंगलभंगकारम् = अमंगलानां मंगलं निःश्रेयसं

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Tru

तद्विरोधिनां पापानां भंगम् आत्यन्तिकनाशं करोतीति तथाभूतं कर्मण्यण्। उत्तरत्राप्ययं हेतुः। एवम्भूतं यन्नाम = यस्य नीलाद्रिनायकस्य नाम अधर्मान् धर्मगन्ध-विधुरान् = धर्मविरोधिनश्च शबरान्, यवनान्। उपलक्षणमेतत्। अतिनीचानपि सद्यः उच्चारणाव्यवहितक्षण एव पुनातीत्यर्थः। वन्द इत्यादि पूर्ववत्। सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्थोभं हेलनमेव वा। वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः। आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः। संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रं विमुक्तदुखाः सुखिनो भवन्ति। नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्दहणे हरेः। तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी नर[१] इत्यादि प्रमाणशतमिहानुसन्धेयम्। अत्र श्रीशुकादिर्दृष्टान्तः।

यस्यैकवारममलं स्मरणं हि पुंसां
सद्यः क्षिणोति सकलं दुरितं च दुःखम्।
यः स्वीकरोति नयति प्रमुदा स्वधाम
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।१४।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यस्य एकवारम् अमलं स्मरणं पुंसां हि सकलं दुरितं दुःखं च सद्यः क्षिणोति। यः प्रमुदा स्वीकरोति' स्वधाम नयति। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भावार्थ— जिसका एक बार पवित्र स्मरण मनुष्यों के सम्पूर्ण पापों तथा दुःखों को तुरन्त नष्ट कर देता है। जो मनुष्यों को प्रसन्नता से स्वीकार करता है तथा अपने धाम परमपद को प्राप्त कराता है। उन 'पतितपावन' नाम वाले प्रभु की वन्दना करता हूँ।।१४।।

विवृत्तिः— स्मरणरूपाम्भक्तिमाह-यस्येति। यस्य नीलाद्रिनायकस्य एकवारं = सकृदेव स्मरणम् अमलं =

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

मलप्रत्यनीकम्। तदुपपादयति-हीति, हि = यतः पुंसां = स्मर्तॄणां दुःखं, तात्कालिकं दुःखं, सकलदुरितं च दुःखहेतुं कृत्स्नं पापं च सद्यः स्मरणोत्तरक्षण एव क्षिणोति नाशयतीत्यर्थः। यो नीलाद्रिनायकः पुंसामित्यनुषज्य द्वितीयया विपरिणम्यते। तथाविधात् पुंसः प्रमुदा-यन्मायामोहिते जगति मत्स्मरणस्य दुर्लभत्वेऽपि मम स्मर्तॄन् समवायमिति प्रमोदेन स्वीकरोति, आत्मीयत्वेन अंगीकरोति, स्वधाम = स्वस्य स्थानं परमपदं नयति प्रापयति चेत्यर्थः। अन्यत् पूर्ववत्। स्थिते मनसि सुस्वस्थे शरीरे सति यो नरः। धातुसाम्ये स्थिते स्मर्ता विश्वरूपं च मामजम्। ततस्तं म्रियमाणं तु काष्ठपाषाणसन्निभम्। अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिमित्यादिकमत्रानुसन्धेयम्। अत्र प्रह्लादादिर्दृष्टान्तः।

यज्जन्मकोटिसुकृतेन यदा कदापि
तिर्यङ्नृदेवदनुसन्ततिभूतयोनौ।
यत् पादसेवनमभूत् स पुमान् विमुक्तो
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।१५।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यत् तिरश्चां, नृणां देवानां दनूनां सन्ततिभूतानां योनौ जन्मकोटीनां सुकृतेन यदा कदापि यत् पादयोः सेवनम् अभूत्, स पुमान् विमुक्तः। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— जिसके तिर्यक्, मनुष्य, देव, दनु के सन्ततिरूपी शरीर में करोड़ों जन्मों के पुण्य के द्वारा कभी कभार यदि उनके चरणों की सेवा हो गई तो वह पुरुष मुक्त हो गया। उन 'पतितपावन' नाम वाले प्रभु की वन्दना करता हूँ।।१५।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विवृत्तिः— पादसेवनरूपाम्भक्तिमाह-यज्जन्मेति॥ यदिति पृथक्पदमव्ययं यस्येत्यर्थकम्। यद् यस्य पुंसः तिर्यङ्नृदेवदनुसन्ततिभूतयोनौ तिर्यंश्च, नरश्च, देवाश्च तदनुसन्ततयो दानवाश्च तिर्यङ्नृदेवदनुसन्ततिभूता तद्रूपा। सुप्सुपेति समासः। एवम्भूता या योनिः तिर्यङ्नृदेवदनुसन्ततिभूतानां योनिरिति वा। योनि शब्दः कारणवाची कार्यभूतशरीरलक्षकः। तस्यां तिर्यगादिभूते यस्मिन् कस्मिंश्च शरीरे इत्यर्थः। जन्मकोटिसुकृतेन अनन्तजन्मार्जितसुकृतपरिपाकेन यदा कदापि काले यत्पादसेवनं यस्य नीलाद्रिनायकस्य पादयोः सेवनमभूत्। उपलक्षणमेतद्-भविष्यति चेत्यर्थः। स पुमान् विमुक्तः संसाराद्विशेषेण मुक्तः। व्युपसर्गः कैवल्यं व्यवच्छिनत्ति। सायुज्यलक्षण-मुक्तिभागभूद् भवति भविष्यति चेत्यर्थः। वन्द इत्यादि पूर्ववत्। अत्र जनकप्रभृतिर्दृष्टान्तः।

यद्वर्षमासदिनयाममुहूर्तमात्रे
यैः कैः प्रयत्नविधिभिस्तव पूजनं स्यात्।
सर्वं बभूव सुकृतं पुरुषस्य तस्य
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।१६।।

सुक्षेमा— अन्वयसमासादिः— यत् वर्षमात्रे मासमात्रे, दिनमात्रे, याममात्रे, मुहूर्तमात्रे यैः कैः प्रयत्नविधिभिः तव पूजनं स्यात्। तस्य पुरुषस्य सर्वं सुकृतं बभूव। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— जिस पुरुष का केवल वर्ष भर , केवल महीने भर, केवल दिन भर, केवल दिनार्ध भर, अथवा केवल मुहूर्त भर किसी भी प्रयत्न व्यापार से तुम्हारा पूजन हो गया; उस पुरुष का सम्पूर्ण अच्छा

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

कृत्य सम्पन्न हो गया। उन पतितपावन नाम वाले प्रभु की वन्दना करता हूँ।।१६।।

विवृत्तिः— पूजन रूपां भक्तिमाह -यद्वर्षेति। यदिति पूर्ववत्। यद्यस्य पुरुषस्य वर्षयामदिनमुहूर्तमात्रे। मात्रपदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते, द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वात्। वर्षमात्रे मासमात्रे दिनमात्रे याममात्रे मुहूर्तमात्रे वा। सर्वस्मिन् काले पूजनास-म्भवेऽपि वर्षमात्रे, तत्रापि तदसम्भवे मासमात्रे। एवं सर्वत्रापि नेयम्। अत्यन्तसंयोगस्याविवक्षितत्वान्न द्वितीया। यैः कैश्चिदपि प्रयत्नविधिभिः प्रयत्नपूर्वकव्यापारैः तव यस्येत्यध्याहार्यम्। अन्यथा वन्द इत्याद्युत्तरवाक्यत्वानुपपत्तेः। यस्य तव पूजनं स्यात्। मनसा सन्निहितत्वात्तवेत्युक्तिः। तस्य पुरुषस्य सर्वं सुकृतं बभूव। तेन पुरुषेण कृत्स्नमपि सुकृतं कर्मानुष्ठितमभूदित्यर्थः। भगवत् पूजापेक्षया अन्यन्न सुकृतं कर्मेति भावः। यद्वा तस्य पुरुषस्य सर्वं सुकृतं बभूव। निष्फलस्य कर्मणो सत्कल्पत्वेन कृत्स्नस्यापि सुकृतकर्मणो भगवत् पूजनफलकत्वेन च येन पुरुषेण मुहूर्तमात्रं वा भगवत् पूजनं कृतं तस्य पुरुषस्य कृत्स्नमपि सुकृतं सत्तामलभतेत्यर्थः। भूतनिर्देशो विप्रतिपत्त्यभावं द्योतयति। वन्दे प्रभुमिति-तं त्वां प्रभुं वन्द इत्यर्थः। अन्यत् पूर्ववत्। अत्र पृथुप्रभृतिर्दृष्टान्तः।

धन्यः पुमान् धरणिधर्मधरो ध्रुवोऽसौ
त्वां शर्मदन्नमति यः शिरसैकदापि।
पारं प्रयाति तमपारजगन्नदीशाद्
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।१७।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यः शर्मदं त्वां एकदापि शिरसा नमति, असौ पुमान् धन्यः, धरण्यां ये धर्माः तेषां धरः ध्रुवः। तम् अपारात् जगतः नदीशाद् इव तस्मात् पारं प्रयाति। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— जो शान्तिस्वरूप मोक्ष को प्रदान करने वाले तुमको एक बार भी सिर से नमस्कार करता है, वह पुरुष धन्य है, धरती में जो धर्म हैं, उनका धारण करने वाला स्थिर पुरुष है। उस पुरुष को समुद्ररूपी अपार जगत् से जगदीश पार कराते हैं। उन पतितपावन नाम वाले प्रभु की वन्दना करता हूँ।।१७।।

विवृत्तिः— नमस्काररूपां भक्तिमाह-धन्य इति। यः पुमान् शर्मदं निरतिशयसुखरूपमोक्षप्रदं यं त्वाम् एकदापि शिरसा नमति असौ पुमान् धन्यः = कृतकृत्यः। स एव धरणिधर्मधरः। धरतीति धरः पचाद्यच्। धरण्यां प्रसिद्धा ये धर्मास्तेषां धरः। यद्वा धर्माणां धरो धर्मधरः धरण्यां धर्मधरः, पृथिव्यां सर्वधर्मानुष्ठाताऽसावेवेत्यर्थः। ध्रुवः स्थिरः, स्वात्मानं ध्रुवं करोतीति वा ध्रुवः। ध्रुवशब्दात् तत्करोतीति णिजन्तात् पचाद्यच्। अन्यथा नष्टप्राय एवेति भावः। एवं नमस्कारप्रभावमभिधाय तस्य फलमाह-पारमित्यादिना। अपारजगन्नदीशात् अपारात् जगन्नदीशात्। जगच्छब्दः संसारपरः। संसारार्णवात्। अपारसंसारार्णवमुत्तीर्येत्यर्थः। तम् अभयं तितीर्षतां पारमित्यादि श्रुतिप्रसिद्धम्। पारभूतं यं त्वां प्रयाति प्रकर्षेण याति। पुनरावृत्तिरहितं प्राप्नोतीत्यर्थः। वन्द इत्यादि पूर्ववत्। अत्र *'दुर्गसंसारकान्तारमपारमभिधावताम्। एकः कृष्णनमस्कारो मुक्तितीरस्य देशिकः। एकोऽपि कृष्णो सुकृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः। दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म, कृष्णप्रणामी न पुनर्भवायेत्यादिकमनुसन्धेयम्।* अत्राक्रूरप्रभृतिर्दृष्टान्तः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सांकेत्यहेलनविमन्युगतं च हास्य
दुःखाद्यनन्तसमये पतिताय यस्त्वम्।
दासस्तवेति वदतेऽत्यभयं ददासि
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।१८।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— सांकेत्यं च हेलनं च विमन्योः गतं च हास्य दुःखादीनाम् अनन्तसमये 'दासःतव' इति वदते पतिताय अत्यभयं ददासि, पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— संकेत से, अनादर से या विशेष क्रोध प्राप्त होने की दशा में दुःख आदि के अनेक समयों में 'मै आपका दास हूँ, इतना कहने वाले पतित के लिये पूर्ण अभय प्रदान करते हो। उन पतितपावन नाम वाले प्रभु की मै वन्दना करता हूँ।।१८।।

विवृत्तिः— दास्यरूपां भक्तिमाह-सांकेत्येति। संकेत एव सांकेत्यम्। स्वार्थे ष्यञ्। तच्च हेलनमनादरणं च, विमन्युगतं विशिष्टो मन्युः क्रोधो विमन्युः तस्य गतं प्राप्तिः। अधिकक्रोधावेश इत्यर्थः। तच्च तेषां समाहारस्तस्मिन्नित्यर्थः। दुःखादीति = दुःखादीनि यान्यनन्तानि तेषां समये। दुःखादीनामनन्तसमय इति वार्थः। दुःखादीनामानन्त्यात् तत् समयस्याप्यानन्त्यम्। आदिशब्देन दुःखहेतवो विवक्षिताः। अयमर्थः— हे नारायण! दासस्तवाहमित्यहं यदा वक्ष्यामि तदेदं कार्यं कुर्विति केनचित् संकेतं कृत्वा तत्कार्यकरणावसरे नारायण दासस्तवाहमिति वदते। यद्वा कस्यचित् पुरुषादेः नारायणेति संज्ञा। संकेतं कृत्वा तमुद्दिश्य नारायण दास-स्तवाहमिति वदते, एवं त्वां प्रति अन्यं प्रति वा हेलनक्रोधावेशपरिहासेषु दुःखाद्यवसरे च नारायण दासस्तवाहमिति वदते पतिताय

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

महापातकिनेऽपि अत्यभयम् अतिशयितमभयं मुक्तिं यस्त्वं ददासीति। वन्द इत्यादि प्राग्वत्। *'पतितः स्खलितो वाऽर्तः क्षुत्वा वा विवशोऽब्रुवन्। हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात्'*, इत्यादि प्रमाणान्यत्रानुसन्धेयानि। अत्र हनुमदादिर्दृष्टान्तः।

ब्रह्मेन्द्रशम्भुसनकादिसुरर्षयो यन्
न प्राप्नुवन्ति तपसा नियमादियोगैः।
सख्यं विधाय पुरुषो रमते हि तेन
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।१९।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— ब्रह्मा च इन्द्रश्च शम्भुश्च, सनकादिश्च, सुरर्षयश्च यं तपसा नियमादिभिः योगैः न प्राप्नुवन्ति। तेन हि पुरुषः सख्यं विधाय रमते। पतितपावन नामधेयं प्रभुं वन्दे।।१९।।

भाषार्थ— ब्रह्मा, इन्द्र, शम्भु, सनक इत्यादि योगी देवता ऋषि भी जिनको तपस्या तथा नियम आदि अंगों से तथा योग से प्राप्त नहीं कर पाते। उन के साथ कोई सामान्य मनुष्य भी मैत्रीभाव प्राप्त करके आनन्द प्राप्त करता है। उन पतितपावन नाम वाले प्रभु की मै वन्दना करता हूँ।।१९।।

विवृत्तिः— सख्यरूपां भक्तिमाह ब्रह्मेति-ब्रह्मेन्द्रशम्भवः सनकादयो योगिनश्च सुरर्षयो नारदादयश्च तपसा = कृच्छ्रचान्द्रायणादिना ज्ञानयोगेन च नियमादियोगैः = नियमाद्यंगविशिष्टैस्समाधिभिर्व्यक्त्यभिप्रायं बहुवचनम्। यं त्वां न प्राप्नुवन्ति। अनेन ज्ञानाधिका अप्येते न प्राप्नुवन्ति किं पुनर्मन्दमतय इति दौर्लभ्यं द्योत्यते। तेन त्वया सह सख्यं = मैत्रीं विधाय पुरुषः

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

= प्राकृतपुरुषोऽपि रमते इति सौलभ्योक्तिः। हिशब्दोऽस्यार्थस्य अर्जुनोद्धवसुग्रीवादिषु प्रसिद्धिं द्योतयति। वन्द इत्यदि प्राग्वत्।

आत्मार्पणं हि कुरुते पुरुषस्तु यस्ते
स्वात्मार्पणं त्वमपि देव करोषि तस्मै।
श्रेष्ठं तु तं त्वमनुगच्छसि, अनृणोऽतो
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।२०।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— देव, यस्तु पुरुषः ते आत्मनः अर्पणं हि कुरुते। तस्मै त्वम् अपि स्वात्मनः अर्पणं करोषि। श्रेष्ठं तु तं त्वम् अनुगच्छसि अतःअनृणः। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।।२०।।

भाषार्थ— हे देव, जो मनुष्य तुम्हें उद्देश्य करके अपना आत्मार्पण करता है। उसके लिये तुम भी अपनी आत्मा का समर्पण करते हो। तुम उस श्रेष्ठ पुरुष के पीछे चलते हो। इस प्रकार तुम अनृण हो जाते हो। उस पतितपावन नाम वाले प्रभु की वन्दना करता हूँ।

विवृत्तिः— आत्मसमर्पणरूपां भक्तिमाह-आत्मार्पणमिति। हे देव, यस्तु पुरुषः ते = तुभ्यं त्वामुद्दिश्य आत्मार्पणं स्वात्मार्पणं कुरुते। तु शब्देनात्मसमर्पणकर्तुरितरवैलक्षण्यं द्योत्यते। सत्कर्मनिरताः शुद्धा सांख्ययोगविदस्तथा नार्हन्ति। शरणस्थस्य कलां कोटितमामपीत्यादि प्रमाणप्रसिद्धत्वं द्योत्यते। तस्मै पुरुषाय त्वमपि स्वात्मसमर्पणं करोषि। स्वात्मानं तदधीनं करोषीत्यर्थः। बलिरत्र दृष्टान्तः। श्रेष्ठं तु तं पुरुषं त्वमनुगच्छसि। *'निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शिनम्। अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूययेत् यं त्रिरेणुभिरिति* त्वयैवोक्तम्। अतस्त्वमनृणो भवसि। आत्मानमनृणं मन्यसे इत्यर्थः। वन्द इत्यादि प्राग्वत्।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

स्त्रैणो धनान्धमदिरावशसम्प्रमत्तः।
पापी त्वजामिलशठः कथनात्तु यस्य।
नाम्नो जगाम पदवीं मुनिभिर्दुरायां
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।२१।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— स्त्रैणः धनेन अन्धः मदिरावशेन सम्प्रमत्तः पापी तु अजामिलश्चासौ शठः यस्य नाम्नः कथनात् मुनिभिः दुरायां पदवीं जगाम। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— स्त्री के प्रति लम्पट, धन से अन्धा, मदिरा के वश से मतवाला, पापी, अजामिल नामक धूर्त जिस आपके नाम के उच्चारण से योगियों के द्वारा भी दुर्लभ पदवी अर्थात् मोक्ष को प्राप्त किया (उन) पतितपावन नाम वाले प्रभु की मै वन्दना करता हूँ।।२१।।

अनुशीलन— पुराणों के अनुसार कान्यकुब्ज देश के निवासी अज़ामिल के दासी से १० पुत्र थे। सबसे छोटे का नाम नारायण था। मरते समय इसने बालक को बुलाने के बहाने नारायण का नाम लिया। इतने मात्र से ही यह इस लोक से तर गया तथा इसने विष्णुलोक प्राप्त किया। यह कथा भागवत ६.१.२० से अन्त तक कही है।

कवि ने इसी भाव को स्वरचित 'जगन्नाथ-शतक' में इस प्रकार प्रकट किया है—

नारिन को प्यारो तो कुनारिन को भोगवारो।
अधम अजामिल अधीश अप्रमानी को।
सुत मिसि मरत समै सो लै तिहारो नाम।
छूट्यो यम पाश ते समत्व लह्यो ज्ञानी को।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विवृत्तिः— अथ द्वादशभिः श्लोकैर्भगवतो दीनदयालुत्व-शुद्धभावप्रसाद्यत्व-ब्रह्मण्यत्व-भक्ताभीष्टप्रदत्व-निर्हेतुकानुग्रहशीलत्व-दीनसखत्व-कृतज्ञत्व-प्रीत्यभिज्ञत्व-सौशील्य-शरणागतरक्षकत्व-प्रेमवश्यत्व-दुष्टनिग्रहपूर्वकानुग्रह-कर्तृत्वगुणाः वर्ण्यन्ते। तत्रादौ दीनदयालुत्वमाह-स्त्रैण इति। स्त्रैणः = स्त्रीलम्पटः, स्त्रिया नञ् प्रत्ययः। धनान्ध-मदिरावशसम्प्रमत्तः = धनेन अन्धः, नष्टप्रज्ञः, मदिरावशेन सम्प्रमत्तः। अनवहितः स चासौ स च तथोक्तः। पापी पापप्रचुरः। तुरप्यर्थः। एवम्भूतोऽप्यजामिलशठः अजामिलाख्यो धूर्तः यस्य नारायणस्य तव नाम्नः कथनात् उच्चारणादेव एवार्थे, न तु नोच्चारणस्य नारायणपरत्वं व्यवच्छिद्यते, पुत्रपरादप्युच्चारणादित्यर्थः। मुनिभिः, योगिभिरपि दुरायां दुर्लभां पदवीं मुक्तिं जगाम प्रापेत्यर्थः। वन्द इत्यादि प्राग्वत्।

विप्रामिषं त्वयि समर्पितवान् परेण
प्रेम्णा पिशाचकुलजः श्रुतिबद्धघण्टः।
आलिंग्य तन्निजजनं कृतवान् स्वदोर्भ्यां
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।२२।।

सुक्षेमा— अन्वयसमासादिः— पिशाचस्य कुले जातः श्रुत्योः बद्धे घण्टे येन स तथाभूतः परेण प्रेम्णा त्वयि विप्रस्य आमिषं समर्पितवान्। तं स्वदोर्भ्याम् आलिंग्य निजजनं कृतवान्। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— पिशाच के कुल में उत्पन्न, जिसने अपने कानों में घण्टे बाँध लिये हैं, ऐसे पुरुष ने अत्यन्त प्रेम से आपको ब्राह्मण का मांस समर्पित किया। आपने उसे अपनी भुजाओं से आलिंगन करके अपना

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

जन बनाया। उन पतितपावन नाम वाले प्रभु की मै वन्दना करता हूँ।।२२।।

विवृत्तिः— शुद्धभावप्रसाद्यत्वमाह-विप्रामिषमिति। श्रुतिबद्धघण्टः = श्रुत्योः श्रवणयोः बद्धे घण्टे येन स तथोक्तः। भगवन्नाम कर्णविवरं मा गमदिति कर्णयोर्घण्टाबन्धनं कृतवान् तत एव घण्टाकर्ण इति प्रसिद्धः। तत्कुल-जन्मा य इत्यध्याहार्यम्। उत्तरत्र तमिति श्रवणात्। परेण प्रेम्णा पश्चाद्रुद्रोपदेशजनितत्वद्विषयकपरमभक्त्या विप्रामिषं स्वाहारभूतं ब्राह्मणमांसं त्वयि समर्पितवान्। त्वयीति विषयसप्तमी। *'यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नस्तस्य देवता'* इति शास्त्रार्थमनुसन्दधानस्तुभ्यं निवेदितवान्। त्वमपि तं स्वदोर्भ्यां स्वभुजाभ्यामालिङ्ग्य त्वमपि तमेव शास्त्रार्थमनुसन्धाय च भोग्यभूतं स्वात्मानम् आलिंगनापदेशेन तस्मै समर्प्य निजजनं स्वपार्षदं कृतवानसीत्यर्थः। वन्द इत्यादि पूर्ववत्।

दीनोऽतिजीर्णवसनः क्षुधया कृशोऽपि
सन्दत्ततण्डुल उदारमतिः सुदामा।
उत्थाय विस्मृतरमः परिषस्वजे यो
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।२३।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— दीनः अतिजीर्णं वसनं यस्य स तथाभूतः, क्षुधया कृशः अपि, सन्दत्ताः तण्डुलाः येन स तथोक्तः, उदारा मतिः यस्य स तथाभूतः सुदामा। यो विस्मृता रमा येन स तथाभूतः उत्थाय परिषस्वजे। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

भाषार्थ — दरिद्र अत्यन्त पुराने वस्त्रों वाले, भूख से दुर्बल, जिसने चावल प्रदान किया है ऐसे, उदार मति वाले सुदामा (थे)। (उनको) जिसने रुक्मिणी को भुलाने वाले होकर उठ कर आलिंगन किया। उन पतितपावन नाम वाले प्रभु की मै वन्दना करता हूँ।।२३।।

विवृत्तिः— ब्रह्मण्यत्वमाह-दीन इति। अत्र यत्तच्छब्दा-वध्याहार्य योज्यम्। दीनः = दारिद्र्यावसन्नः। अतिजीर्णवसनः अतीव जीर्णं वसनं = वस्त्रं यस्य स तथोक्तः। क्षुधया बुभुक्षया कृशः, शुष्कदेहः। एवम्भूतोऽपि, उदारमतिः = उदारा महती मतिर्यस्य स तथोक्तः। अतएव सम्- *अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सत्यमेनं ततो विदु*रित्युक्तलक्षणः। दत्ततण्डुलः तस्मै दत्तास्तण्डुलाः येन स तथोक्तः। एवम्भूतो यः सुदामा कुचेलः तं यो भवान् विस्मृतरमः = विस्मृता रमा पार्श्वस्था रुक्मिणी येन स तथोक्तः। अतिप्रियस्वभक्तदर्शनहर्षेण पार्श्वस्थामपि प्रेयसीं रुक्मिणीं विस्मरन्नित्यर्थः। त्वरया उत्थाय परिषस्वजे = आलिंगितवानभूदित्यर्थः। अनेन भगवतः स्वभक्तेषु सौलभ्यमपि व्यक्तम्। वन्द इत्यादि प्राग्वत्।।

भोजेन्द्रदास्यनिरता मलिनाऽतिनीचा
कुब्जा तु या मधुपुरे पथि तां विलोक्य।
गत्वा गृहं कमलया सदृशीं व्यधाद्यो
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।२४।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— भोजेन्द्रस्य दास्ये निरता मलिना अतिनीचा तु कुब्जा। तां मधुपुरे पथि विलोक्य, गृहं गत्वा यः कमलया सदृशीं व्यधात्। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

भाषार्थ— कंस की सेवा में लगी हुई, मलिन ,अत्यन्त नीच कुब्जा थी। उसको मथुरा में रास्ते में देख कर घर जाकर जिसने लक्ष्मी के समान बनाया। उन पतितपावन नाम वाले प्रभु की मै वन्दना करता हूँ।।२४।।

विवृत्तिः— भक्ताभीष्टदत्वमाह - भोजेन्द्रेति। भोजेन्द्र-दास्यनिरता = भोजेन्द्रः कंसः तस्य दास्ये सेवायां निरता आसक्ता, मलिना = शरीरेण मनसा च मलिना, जात्यापि अतिनीचा, तुरप्यर्थः। एवंभूताऽपि या कुब्जा तां मधुपुरे = मथुरायां पथि विलोक्य तामनुजिघृक्षुः गृहं तद्गेहं गत्वा यो भवान् तां कमलया सदृशीं व्यधात्। विहारादिना लक्ष्मीतुल्यामकरोदित्यर्थः। वन्द इत्यादि प्राग्वत्।

जात्या तु वायकवरं हतधर्मलेशं
गत्वा तदीयभवने कृतवान् स्वकम्पः।
वस्त्राणि तद्विरचितानि दधार गेहे
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।२५।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— हतःधर्मस्य लेशः येन तं तथाभूतं जात्या तु वायकवरं (दृष्ट्वा) तदीयभवनं गत्वा स्वकम्पः कृतवान्। तेन विरचितानि वस्त्राणि देहे दधार। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— जिसके पास धर्म का लेश भी विनष्ट हो गया है ऐसे जाति से मुख्य जुलाहे को (देख कर) उसके घर पर जाकर अपनी दया प्रदान की। उसके बनाए कपड़ों को अपने शरीर में पहना। उन पतितपावन नाम वाले प्रभु की मै वन्दना करता हूँ।।२५।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विवृत्तिः— निर्हेतुकानुग्रहशीलत्वमाह-जात्येति। हतधर्मलेशं हतो निरस्तो ऽननुष्ठितो वा धर्मस्य लेशोऽपि येन तं जात्या वायकवरं = वायकमुख्यं मुख्यवायकमित्यर्थः, तदीयभवनं गत्वा तद्गृहमेव गत्वा यो भवान् स्वकम्। अनुकम्पायामकच्। कृपापात्रमात्मीयं कृतवान् = अकार्षीत्। तद्विरचितानि विशेषेण परिधापितानि वस्त्राणि विचित्रवसनानि देहे दधार चेत्यर्थः। वन्द इत्यादि प्राग्वत्।

नीचो निषादकुलजो जलजीवभोक्ता
जग्राह तत्करसमर्पितकन्दमूलम्,
कृत्वा सखायमतुलं परिषस्वजे यो
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।२६।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— जलजीवानां भोक्ता निषादस्य कुले जातः नीचः तस्य कराभ्यां समर्पितं कन्दमूलं जग्राह। अतुलं सखायं कृत्वा यः परिषस्वजे। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— पानी में होने वाले जीव मछली आदि का खाने वाला, निषाद कुल में उत्पन्न, नीच (जो गुह) उसके हाथों से समर्पित कन्द मूल को स्वीकार किया। उससे गाढ़ी मित्रता करके जिन्होंने उसका आलिंगन किया। उन पतितपावन नाम वाले प्रभु की मै वन्दना करता हूँ।।२६।।

विवृत्तिः— एवं रामावतारवृत्तेनापि पतितपावनत्वादिकमुपपादयन् दीनसखत्वमाह-नीच इति। नीचः वृत्तजात्यादिभिरतिनिकृष्टः। तदेवाह-जलजीवभोक्ता = जलजीवाः जलजन्तवो मत्स्यादयः तेषां भोक्ता, तदाशी। निषादकुलजः नाविककुलीनः, य इत्याध्याहार्यम्। एवम्भूतो यो गुहः

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तत्करसमर्पितकन्दमूलं तस्य गुहस्य कराभ्यां समर्पितं = सम्यक् प्रेमातिशयेन निवेदितं कन्दमूलं यो भवान् जग्राह = स्वीचकार। तं गुहम् अतुलसखायम् = अद्वितीयमित्रं कृत्वा परिषस्वजे = आलिलिंग चेत्यर्थः। ननु गुहकृतकन्द-मूलादिसमर्पणप्रतिनिधिभूतं सख्यं कृतमेव, पुनश्च परिष्वङ्गकरणे को हेतुरिति चेदुच्यते-यद्यपि कन्दमूलादिसमर्पणप्रतिनिधिभूततया सख्यङ्कृतमेव तथापि यद्यहं श्रीरामेण संगच्छेयं तदा भरतो राज्यमनुप्राप्तो मां पीडयेत् स्थानाच्च्यावयेदित्यादिकमवि-गणयन्नेवाव्याकुलचित्तो गुहस्सर्वात्मना मां समशिश्रियत्। एतदनुरूपं प्रतिनिधिमन्यत्र पश्याम्यतः परिष्वङ्गापदेशेन स्वात्मानमेव समर्प्यानृणो भविष्यामीति भगवता श्रीरामेण कृतज्ञेन परिष्वङ्गः कृत इति। अत एवोत्तरत्र भरतागमन-समये भरतमालोक्य निर्भयन्निरोद्धुमुद्यतः पश्चाच्छ्रीरामप्रेमभरितं भरतं ज्ञात्वैव तेन समं समगच्छत्। तथा च श्रीमद्रामायणेऽयोध्याकाण्डे '*यदाऽदुष्टस्तु भरतो रामस्येह भविष्यति, इयं स्वस्तिमती सेना गङ्गामद्य तरिष्यति*'[१] इत्युक्तोपायनङ्गुह्यमत्स्यमांसमधूनि च अभिचक्राम भरतन्निषादाधिपतिर्गुह इति। वन्द इत्यादि-अतस्त्वं पतितपावन इति भावः।

मांसादकं वनचरं दुरितौघयुक्तं,
गृध्रं जटायुषमलं परिरभ्य दोर्भ्याम्।
तस्मै ददौ परगतिं यतिदुर्लभां यो
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।२७।।

---

१. बाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड ८४/९

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— मांसस्य अदकं वने चरति तं, दुरितानाम् ओघेन युक्तं गृध्रं जटायुषं दोर्भ्याम् अलं परिरभ्य यः तस्मै यतिभिः दुर्लभां परगतिं ददौ। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।।२७।।।

भाषार्थः— मांस खाने वाले, जंगल में घूमने वाले, पापों के समूह से युक्त गृध्र जटायु को हाथों से पूरी तरह आलिंगित करके उसे संन्यासियों को भी दुर्लभ मोक्ष को जिन्होंने दिया। (उन) पतितपावन नाम वाले प्रभु की मै वन्दना करता हूँ।।२७।।

विवृत्तिः— कृतज्ञत्वमाह- मांसादकमिति। मांसादकं मांसभक्षकं वनचरं वन एव चरति संचरतीति वनचरं सदुपाश्रयादिरहितमिति भावः। तत्पुरुषे कृति बहुलमिति सप्तम्या अलुका भाव्यत्वेऽपि बहुलग्रहणाल्लुक्। दुरितौघयुक्तं = दुरितानां पापानामोघः = समूहः तेन युक्तम्। अत एव गृधम्-अन्यथा गृध्रजन्मासम्भवादिति भावः। एवम्भूतमपि जटायुषं दोर्भ्यां = स्वभुजाभ्यां परिरभ्य प्रेमाविलस्सन्नालिंग्य। अनेन मदालिङ्गनेन रावणशस्त्रजनितपीडां त्यक्त्वा यदि जीवितुमिच्छति तदा जीवत्विति भगवतोऽभिप्रायः। जटायुस्तु रावणशस्त्रपीडां भगवदालिंगनेन हित्वा रामसाक्ष्यकरणेन सर्वं कृतमभूत्। इतः परं न किञ्चित् कर्तव्यमवशिष्टं किमर्थं जीवितव्यं, राममेव प्राप्नुयामिति स्वेच्छयैव शरीरं जहाविति च गम्यते। तस्मै जटायुषे यतिदुर्लभां यतिभिः निरस्तसांसारिककृत्स्नविषयैः संन्यासिभिरपि दुर्लभां दुष्प्रापां परगतिं यो भवान् ददौ = दत्तवानित्यर्थः। वन्द इत्यादि-अतोऽपि पतितपावन इति भावः।

विज्ञानभक्तिविरतीष्टसुधर्महीना
नीचा महावनचरी शबरी हि तस्यै।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trus

भुक्त्वा तदर्पितफलं प्रददौ गतिं यो
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।२८।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— विज्ञानं च भक्तिश्च विरतिश्च इष्टं च तथाभूताश्च ते सुधर्माः तेभ्यो हीना, नीचा, महति वने चरतीति तथाभूता या शबरी तस्यै तया अर्पितं फलं भुक्त्वा यः गतिं प्रददौ। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।।२८।।

भाषार्थ— शास्त्रज्ञान, भक्ति, वैराग्य याग इत्यादि जो सुधर्म उनसे हीन, महावन में विचरण करने वाली नीच जो शबरी उसको, उसके द्वारा अर्पित फल खा कर परम गति जिसने प्रदान की। उन पतितपावन नाम वाले प्रभु की वन्दना करता हूँ।।२८।।

विवृत्तिः— प्रीत्यभिज्ञत्वमाह - विज्ञानेति। जन्यज्ञानं योगो वा भक्तिः - विवेकादिसाधनसप्तकानुगृहीतमुपासनं, विरतिर्विरागः, इष्टं = यागादि, एवंजातीया ये सुधर्माः शोभना धर्मा अलौकिकश्रेयः साधनानि तैर्हीना, नीचा जात्या नीचा महावनचरी महति वनचरी किराती। महत्त्वमत्र न पूज्याभिप्रायम् अपितु निन्द्यत्वाभिप्रायम्। महामूर्ख इतिवत्। महति वने चरतीति वा। अनेन सत्संगाद्यनर्हत्वं गम्यते। हिः प्रसिद्धौ। एवं प्रसिद्धा या शबरी तदर्पितफलानि तया अतिप्रेम्णा निवेदितानि फलानि भुक्त्वा तस्यै शबर्यै यो भवान् गतिं मुक्तिं ददौ। अतो भवान् पतितपावन इत्यर्थः। वन्द इत्यादि।

स्वप्नेऽपि दर्शनममंगलदं वदन्ति
येषां बुधाः स्मरणतो ह्यशुभानि लोके।
तैर्वानरैः सह चकार सुमित्रतां यो
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।२९।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— बुधाः येषां स्वप्ने अपि दर्शनम् अमंगलदं वदन्ति। (येषां) स्मरणतः लोके हि अशुभानि। यः तैः वानरैः सह सुमित्रतां चकार। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— ज्ञानी लोग जिन (वानरों का) स्वप्न में भी दर्शन करना अमंगलप्रद मानते हैं। जिनके स्मरण से ही लोक में अशुभ होता है। जिसने उन वानरों के साथ मित्रता की। उन पतितपावन नाम वाले प्रभु की वन्दना करता हूँ।।२९।।

विवृत्तिः— सौशील्यमाह - स्वप्नेऽपीति। बुधाः ज्ञानिनः येषां वानराणां स्वप्नेऽपि दर्शनम् अमंगलदम् = अशुभावहं वदन्ति। तथा च श्रीमद्रामायणे '*स्वप्नो मयाऽयं विकृतोऽद्य दृष्टः शाखामृगः शास्त्रगणैर्निषिद्ध*' इति। स्वप्नेऽपीत्यपि शब्दस्य स्वप्नेऽपि येषां दर्शनममंगलदं, किं पुनर्जागर इति भावः। येषां वानराणां स्मरणतः स्मृतिमात्रतोऽपि अशुभानि लोके हि-अशुभानि भवन्तीति लोके प्रसिद्धम्। तैस्तथाभूतैरपि वानरैः सह यो भवान् सुमित्रतां स्थिराम् अग्निसाक्षिकं यथा तथा निष्कपटां मैत्रीं चकार कृतवानसीत्यर्थः। अतस्त्वं पतितपावन इति भावः। वन्द इत्यादि।

दुष्टानुजं रजनिकाचरवंशजातं
पादान्तिके निपतितं भरतेन तुल्यम्,
उत्थाप्य तं स्वभुजतः परिषस्वजे यो
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।३०।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— रजनिकायां चरन्ति ये तेषां तथाभूतानां वंशे जातं, दुष्टस्य अनुजं, पादयोः अन्तिके निपतितं भरतेन तुल्यम् उत्थाप्य तं यः स्वभुजतः परिषस्वजे। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Tru

भाषार्थ— रात्रि में विचरण करने वाले राक्षसों के कुल में उत्पन्न, पैरो के समीप गिरे हुए, दुष्ट (रावण) के छोटे भाई (विभीषण) को भरत के समान उठाकर जिसने अपनी भुजाओं से आलिंगित किया। उन पतितपावन नाम वाले प्रभु की वन्दना करता हूँ।।३०।।

विवृत्तिः— शरणागतरक्षकत्वमाह-दुष्टेति। रजनिकाचरवंशजातं *रजन्येव रजनिका।* स्वार्थे कः। रजनिकाचराः राक्षसाः तद्वंशजातं = नितरामनन्यगतिकत्वेन पतितं दुष्टानुजं दुष्टो रावणः तस्य अनुजं कनिष्ठभ्रातरं विभीषणं भरतेन तुल्यम् उत्थापनक्रियाविशेषणमेतत्। भरतशब्दो भरतोत्थापनपरः। भरतोत्थापनेन समम् उत्थाप्य तं विभीषणं स्वभुजतः स्वभुजाभ्यां यो भवान् परिषस्वजे। भरतेन तुल्यमित्यत्राप्यनुषज्यते। भरतेन समम् आलिलिंगेत्यर्थः। भरतेन तुल्यं परिषस्वज इत्यस्यायमाशयः - इदानीमेव लङ्काधिपत्यार्थं त्वामभिषिञ्चामि, पश्चाद्रावणं हत्वा तुभ्यन्दास्यामि। रणे जयपराजययोरव्यवस्थत्वाद्यद्यहं रावणन्न जेष्यामि तदा मत्कृतमभिषेकं व्यर्थन्न मन्वीथाः। अयोध्याधिपत्यमेव मदीयं तुभ्यन्दास्याम्यस्मिन्नर्थे संशयम्मा कार्षीः। विश्वसिहि, यतस्त्वं मत्तुल्यो भरततुल्यश्चेति। वन्द इत्यादि।

जात्या तु गोपकुलजाः परधर्महीनाः
गोपाश्च गोपवनितास्तुलसीवने तैः।
चिक्रीड रासपरिमण्डलमण्डितो यो
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।३१।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— जात्या गोपकुले जाताः पराः ये धर्माः तैः हीनाः (ये) गोपाः गोपानां वनिताश्च तैः तुलसीवने रासाय (परिक्लृप्तं) मण्डलं तैः मण्डितः यः चिक्रीड। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— जाति से गोपकुल में उत्पन्न, उत्तम धर्मों से हीन जो गोप और गोपियाँ उनके साथ रासक्रीडा के लिये बनाए गए गोलाकार से सुशोभित होकर जिन्होंने क्रीडा की। उन पतितपावन नाम वाले प्रभु की वन्दना करता हूँ।।३१।।

विवृत्तिः— प्रेमवश्यत्वमाह-जात्येति। जात्या गोपकुलजाः गोपवंशोदभ्वाः महाशूद्रा इत्यर्थः। न च गोपकुलजा इत्यनेनैव जातिलाभे जात्येति व्यर्थमिति शङ्क्यम्। तज्जातीयानामपि तपः प्रभावादिना विश्वामित्रादिवत् जात्यन्तरसम्भवेन तद्व्यावृत्त्यर्थत्वात् इममेव विशेषं द्योतयति तु शब्दः। अतएव परधर्महीनाः परा उत्कृष्टा वेदविहिता ये धर्माः कर्मज्ञानादयः तैर्हीनाः। एवम्भूता ये गोपाः गोपवनिता गोप्यश्च ते ताश्चनैतैः सह पुमान् स्त्रियेत्येकशेषः। तुलसीवने वृन्दावने रासपरिमण्डलमण्डितः रासाय रासक्रीडायै परिक्लृप्तं मण्डलं तेन मण्डितः शोभमानः तन्मण्डितं येनेति वा तथोक्तो यो भवान् चिक्रीड = विजहारेत्यर्थः। अत्र यद्यपि रासपरिमण्डलमण्डित इति विशेषणेन तैः सह रासमण्डले विहारं कृतवानित्यर्थो गम्यते, तथापि गोपैः सह रासमण्डले विहारासम्भवात् गोपैः सह स्वलोकदर्शनादिना वृन्दावने गोपीभिः सह रासमण्डले चिक्रीडेति यथायोग्यमर्थोऽवसेयः। वन्द इत्यादि।

पापी महाविषधरः किल कालियो यः
सम्प्लुत्य · भास्करसुताह्रदनीरमध्ये।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

संनृत्य तत्फणगणेष्वभयं ददौ यो
वन्दे प्रभुं पतितपावननामधेयम्।।३२।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यः भास्करस्य सुतायाः ह्रदस्य नीरमध्ये सम्प्लुत्य, पापी महाविषं धरति तथाभूतः यः किल कालियः तस्य फणगणेषु सन्नृत्य अभयं ददौ। पतितपावननामधेयं प्रभुं वन्दे।

भाषार्थ— जिसने यमुना ह्रद के जल के बीच कूद कर पापी महाविष धारण करने वाला जो कालिय नाग था, उसके फन समूहों पर नाच कर उसे अभय प्रदान किया। उन पतितपावन नाम वाले प्रभु की वन्दना करता हूँ।।३२।।

विवृत्तिः— दुष्टनिग्रहपूर्वकानुग्रहकर्तृत्वमाह—पापीति। यो भवान् भास्करसुताह्रदनीरमध्ये यमुनाह्रदमध्ये सम्प्लुत्य पापी पापप्रचुरः महाविषधरः धरतीति धरः महतो विषस्य धरः महाविषधरः, महान् विषधर इति वा। एवम्भूतो यः कालियः किल कालिय इति प्रसिद्धः। तत्फणगणेषु तत्फणसमूहेषु सन्नृत्य सम्यक् नर्तनं कृत्वा तस्मै अभयं विरोधिभ्यो भयाभावं ददौ। पतितपावननामधेयं तं प्रभुं त्वां वन्द इत्यर्थः।

किं किं ब्रवीमि पतितोद्धरणं हि लोके
यद्यत् त्वया कृतमनन्तचतुर्युगेषु।
तस्मात् त्वदीयचरणं शरणं गतोऽहं
मामुद्धरस्व कृपया जगदीश कृष्ण।।३३।।

सुक्षेमा— अन्वयसमासादिः— अनन्तेषु चतुर्युगेषु त्वया हि लोके यद्यत् पतितोद्धरणं (तत्) किं किं ब्रवीमि। तस्मात् अहं त्वदीयचरणं शरणं गतः। जगदीश कृष्ण! कृपया माम् उद्धरस्व।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

भाषार्थ— अनन्त चारों युगों के बीच आपने इस विश्व में जो पतितों का उद्धार किया, (उनमें) मै क्या क्या बताऊँ। इसलिये मै आपके चरणों की शरण में गया हूँ। हे जगदीश कृष्ण! कृपया मेरा उद्धार कीजिये।।३३।।

विवृत्तिः— किं किमिति-हे अनन्तदयावात्सल्याद्यनन्त-कल्याणगुणविशिष्ट! नान्तं गुणानां गच्छन्ति तेनानन्तोऽयमुच्यत इति हि निरुच्यते। चतुर्युगेषु चतुर्णां युगानां समाहारश्चतुर्युगं पात्रादित्वादस्त्रीत्वेन द्विगोरिति न ङीप्। तद्बहुत्वविवक्षया बहुवचनं, बहुषु चतुर्युगेष्वित्यर्थः। अनन्तचतुर्युगेष्वित्येकं पदं वा। चतुःसंख्याकानि युगानि चतुर्युगानि, मध्यमपदलोपी समासः। अनन्तानि चतुर्युगानीति विग्रहः। तेषु त्वया लोके जगति यद्यत् पतितोद्धरणं पतितानामत्यन्तदुष्टानामुद्धरणं रक्षणं कृतं, वीप्सया तच्चानन्तमनेकप्रकारं च विवक्षितं तेषां मध्ये किं किं ब्रवीमि। सर्वान्येवातिविलक्षणानीति भावः। अस्यार्थस्य प्रसिद्धिं द्योतयति हिशब्दः। तस्मात्तव सर्वरक्षकत्वात् अहम् उपायान्तरशून्यः त्वदीयचरणं शरणं उपायम्। उपाये गृहरक्षित्रोः शब्दः शरणमित्ययं वर्तते। साम्प्रतं त्वेष उपायार्थैकवाचक इत्युपायवाचकत्वस्मरणात् गतः अध्यवसितवान्। गत्यर्थानां धातूनां बुद्ध्यर्थत्वात् बुद्धेश्च प्रकृते अध्यवसायरूपत्वात् मा संसारार्णवे निमग्नं गत्यन्तरशून्यतया त्वां शरणागतं मां कृपया केवलयैव कृपया उद्धरस्वेत्यर्थः। उद्धरणफलस्य शेषलाभस्य शेषिण एव फलत्वेन क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वादात्मनेपदम्। स्वकृपयेति वाच्छेदः। स्वया आत्मीयया स्वासाधारणकृपयेत्यर्थः। देशविशेषविशिष्ट-भगवदनुभवज आनन्द एवोद्धरणफलं विवक्षितमिति तस्य

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

कर्तृगामित्वाभावान्नात्मनेपदम्। जगदीशेति-ईशितव्यसंसारे क्लिश्यतो ममोपेक्षणम् ईशितुस्ते नोचितमिति भावः। कृष्णेति न मे भक्तः प्रणश्यति। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामीति त्वयैव व्युक्तं मा विस्मार्षीरिति भावः।

न त्वत्समः पतितपावनकार्यकारी
नास्मादृशो जगति सम्पतितावनीशः।
दिष्ट्या कृतं विशदमित्थमवेक्ष्य योगं
मामुद्धरस्व कृपया जगदीश कृष्ण।।३४।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— त्वया समः पतितानां पावनम् एव कार्यं कर्तुं शीलम् अस्य इति तथाभूतः न (अस्ति)। जगति अस्मादृशः सम्यक् पतितानाम् अवनीशः न (अस्ति)। इत्थं योगं विशदम् अवेक्ष्य दिष्ट्या कृतम्। जगदीश कृष्ण! कृपया माम् उद्धरस्व।

भाषार्थ— आपके समान पतितों को पवित्र कार्य करने के स्वभाव वाला कोई नहीं है। इस विश्व में हमारे जैसा अत्यन्त पतितों में अग्रगण्य कोई नहीं है। इस प्रकार इस सम्बन्ध को भली प्रकार देखते हुए आपने सौभाग्य से इसे माना है। हे जगदीश कृष्ण! कृपया मेरा उद्धार कीजिये।।३४।।

विवृत्तिः— न त्वत्सम इति- त्वत्समः = त्वत्सदृशः पतितपावनकार्यकारी = पतितानां पावनं, पवनमेव पावनं पवित्रत्वं स्वार्थे अण्। निवृत्तप्रेषणाण्णिजन्ताद्वा भावे ल्युट्। तद्रूपं यत्कार्यं तत्कर्तुं शीलमस्येति तथोक्तः। न च दृश्यते-न च श्रूयते इत्यर्थः। जगति प्रपञ्चे अस्मादृशः अस्मत्सदृशः सम्पतितावनीशः = सम्यक् पतिताः सम्पतितास्तेषामवनीशो राजा पतिताग्रगण्य इत्यर्थः। नेति-

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

नैवास्तीत्यर्थः। दिष्ट्या दैवेन, अव्ययानामनेकार्थत्वात्। कृतं कल्पितम्। अज्ञातसुकृतविशेष रूप व्याजावलम्बिन्या त्वत्कृपयैव परिकल्पितमिति यावत्। इत्थम् = एवं रूपं योगं पतितपावनाग्रगण्यस्य तव, पतिताग्रगण्यस्य मम चोचितं सम्बन्धमित्यर्थः। विशदं = स्फुटम् अवेक्ष्य विचार्य परित्यागे मम पतितपावनत्वगुण एव हीयेतेति विचार्येत्यर्थः। विशदं योगमिति वान्वयः। योगे वैशद्यं च असन्दिह्यमानत्वापह्नवानर्हत्वादिरूपम्। मामुद्धरस्वेत्यादेः पूर्ववदर्थः।

अन्वेषितं भुवनमेतदतीव बुद्ध्या
स्वोद्धारकारणकृते भवतो विना मे।
दृष्टो न कोऽपि पतितोद्धरणे समर्थो
मामुद्धरस्व कृपया जगदीश कृष्ण।।३५।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— स्वोद्धारस्य कारणस्य कृते एतद् भुवनम् अतीव बुद्ध्या अन्वेषितम्। भवतो विना पतितानाम् उद्धरणे समर्थः कोऽपि मे न दृष्टः। जगदीश कृष्ण! कृपया माम् उद्धरस्व।

भाषार्थ— अपने उद्धार के कारण के लिये इस विश्व को अपनी बुद्धि से खोजा। आपके बिना पतितों के उद्धार में समर्थ कोई भी मुझे दिखाई नहीं दिया। हे जगदीश कृष्ण! कृपया मेरा उद्धार कीजिये।।३५।।

विवृत्तिः— अन्वेषितमिति-स्वोद्धारकारणकृते स्वस्योद्धारः संसारान्मुक्तिः तस्य कारणं करणमेव कारणं तस्य कृते तदर्थं कृते इति तादर्थ्यवाच्यव्ययम् एतद्भुवनम् अतीव प्रकामं निरवशेषमित्यर्थः। अन्वेषितमिति-नन्वेकदेशवर्तिनान्वयात् कृत्स्नं जगत् कथमन्वेषितमित्यत्राह-बुद्ध्येति। बुद्ध्यैव विचारितमित्यर्थः। प्रपञ्चान्तर्वर्तिषु पुरुषेषु मां संसारान्मोचयितुं कः शक्नुयादिति

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सम्यगालोचितमिति यावत्। तथापि नाद्राक्षमित्याह-भवत इत्यादिना-भवतो विना त्वां विना। पृथग्विनेत्यत्र पञ्चम्यनुवर्तनात् पञ्चमी। पतितोद्धरणे पतितस्य ममान्यस्य च उद्धरणे संसारान्मोचने समर्थः कोऽपि मे न दृष्टः = मया न दृष्ट इत्यर्थः। मे इति शैषिकी षष्ठी, न लोकाव्ययनिष्ठेति कारकषष्ठ्या एव प्रतिषेधात्। अथवा दृशेर्बुद्ध्यर्थत्वेन मतिबुद्धीति वर्तमानक्तान्तात् दृष्ट शब्दयोगात् क्तस्य च वर्तमान इति षष्ठी, अद्यापि न दृश्यत इत्यर्थः। तस्मात् त्वमेवोद्धारक इत्याह। मामित्यादि पूर्ववत्।

कामस्य पाशवलितं चपलं मनो मे
सन्धावतीष्टविषयेषु वदामि सत्यम्।
प्राप्स्यामि केन विधिना गतिमुत्तमां ते
मामुद्धरस्व कृपया जगदीश कृष्ण।।३६।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— कामस्य पाशेन वलितं चपलं मे मनः। इष्टेषु विषयेषु सन्धावति, सत्यं वदामि। ते उत्तमां गतिं केन विधिना प्राप्स्यामि। जगदीश कृष्ण! कृपया माम् उद्धरस्व।

भाषार्थ— मेरा मन विषय भोग के जञ्जाल से उलझ कर चञ्चल है। यह अच्छे लगने वाले विषयों की ओर दौड़ता रहता है, सच कहता हूँ। हे जगदीश कृष्ण! कृपया मेरा उद्धार कीजिये।।३६।।

विवृत्तिः— कामस्येति-विषयभोगस्य यः पाशः पाशवद्दुर्मोचा = तद्विषयिणीच्छा, तेन वलितं व्याप्तम्। कामशब्दस्य सम्बन्धिपदत्वात् तत्सापेक्षत्वेऽपि पाशशब्दस्य समासः। उक्तं च हरिणा-प्रतियोगिपदादन्यद्यदन्यत् कारकादपि। वृत्तशब्दैकदेशेन न

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तस्यान्वय इष्यत इति। अत एव चपलं चंचलं मे मनः, इष्टविषयेषु = इष्टेषु विषयेषु = इष्टाभासेषु विषयेष्वित्यर्थः। सन्धावति-सम्यक् धावति, दुर्निवारं धावतीत्यर्थः। ननु नैतत् सत्यं, स्वरक्षणार्थं मां प्रतारयसीत्यत्राह-वदामि सत्यमिति-सत्यमेवैतद् ब्रवीमि न मिथ्येत्यर्थः। सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञस्त्वं जानास्येवेति भावः। तस्मादिति योज्यम्। तस्मात् कारणात् ते = तव उत्तमाम् = इतरपुरुषार्थविसदृशीं गतिं गम्यते इति। गतिरिति गति शब्दः प्राप्तिवाची। ते गतिमिति राहोः शिर इतिवत् षष्ठी। इतरपुरुषार्थविलक्षणं त्वद्रूपं प्राप्यमित्यर्थः। यद्वा गतिशब्दः प्राप्यस्थानवाची। त्वदीयमप्राकृतं मुक्तप्राप्यं दिव्यलोकमित्यर्थः। अथवा गत्यर्थानां बुद्ध्यर्थत्वात् गतिं बुद्धिमित्यर्थः। ते गतिं त्वद्विषयां बुद्धिं, कीदृशीम् उत्तमां निरतिशयफलभूताम् अप्राकृतदेशविशेषप्राप्तिपूर्वकत्वादनुभवरूपां निरतिशयपुरुषार्थभूतां बुद्धिमित्यर्थः। मुक्तिमिति यावत्। विशिष्टदेशप्राप्तिपूर्वकभगवदनुभवस्यैव मुक्तित्वात्। केन विधिना-विधीयते फलायेति विधिरुपायः, केनोपायेन प्राप्स्यामीत्यर्थः। त्वां विना न किंचिदुपायान्तरमस्तीति भावः। तस्मात् मदुद्धरणे निरवधिकदयस्त्वमेवोपाय इत्याह। मामित्यादि पूर्ववत्।

त्वं सर्वदिव्यगुणवृन्दसमन्वितोऽसि
तैः सर्वगर्हितगुणैर्वलितस्तथाऽहम्।
लज्जाऽवनं तव करे मम सर्वथाऽस्ति
मामुद्धरस्व कृपया जगदीश कृष्ण।।३७।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— त्वं सर्वे ये दिव्याः गुणाः तेषां वृन्दं तेन समन्वितः असि। तैः सर्वे ये गर्हिताः गुणाः तैः तथा अहं वलितः। मम लज्जायाः अवनं तव करे सर्वथा अस्ति। जगदीश कृष्ण! कृपया माम् उद्धरस्व!

भाषार्थ— तुम सभी दिव्य गुणों के समूह से युक्त हो। मै अनेक सर्वथा निन्दित गुणों से संसक्त हूँ। मेरी लज्जा की रक्षा सर्वथा तुम्हारे ही हाथों में है। हे जगदीश कृष्ण! कृपया मेरा उद्धार कीजिये।।३७।।

विवृत्तिः— त्वमिति-त्वं सर्वदिव्यगुणवृन्दसमन्वितोऽसि। सर्वे ये दिव्यगुणाः अप्राकृतमंगलगुणाः कारुण्यवात्सल्यादयः तेषां वृन्दं = समूहस्तेन समन्वितः - सम्यगन्वितोऽसीत्यर्थः। गुणान्वये सम्यक्त्वं च फलोपदायकत्वम्। न हि सुमेरोः कनकमयत्वमिव स्वरूपसन्निष्फलमिति भावः। असीति-वर्तमाननिर्देशस्य सार्वदिकत्वेन स्वाभाविकास्तवैते गुणा इति भावः। तथा च श्रूयते— *पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चेति*[१]। अत्र ज्ञानशब्दो ज्ञानावस्था-विशेषाणां कारुण्यादीनामप्युपलक्षकः। तथा अहं तैस्सर्वगर्हितगुणैर्वलितः। तैरिति-बुद्धिस्थमानन्त्यं वक्ति-अनन्तैरित्यर्थः। यद्वा तैस्तथाभूतैः वक्तुमप्यनर्हैरित्यर्थः। सर्वगर्हितगुणैः - सर्वैर्गर्हिता आपण्डितपामरं निन्दिता ये गुणाः, यद्वा सर्वे ये गर्हितगुणाः = निन्दितगुणाः = काम-क्रोधमदमात्सर्यादयः, गुणशब्दस्तन्मूलकपापकर्मणामप्युप-लक्षकस्तैर्वलितः = आक्रान्त इत्यर्थः। परिग्राह्यत्वौ- पयिकगुणलेशेनापि हीनोऽहं केवलं दयावात्सल्यादिभिरेव त्वया रक्ष्य इति भावः। तदेवाह-लज्जावनमित्यादिना। मम या लज्जा तस्या अवनं रक्षणं सर्वथा

---

१. श्वेताश्वतर उपनिषद् ६.८

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सर्वप्रकारेण तव करे अस्तीति। लोकोक्तिरियं मद्रक्षणं सर्वप्रकारेण त्वदधीनमेवेत्यर्थः। अतस्त्वां विना कोऽपि मद्रक्षको नेत्यभिप्रयन्नाह- मामित्यादिना। यद्वा मम लज्जावनं निन्दितस्वीयगुणकर्माद्यनुसन्धानेन मम या लज्जा अनुतापादिमूलभूता तस्या अवनं रक्षणं स्थितिरिति यावत्। सर्वथा तव करेऽस्ति त्वदधीनमित्यर्थः। अयमर्थः- प्रथमतः स्वीयनिषिद्धगुणकर्मानुसन्धानेन लज्जा जायते, ततोऽनुतापः। ततस्तन्निवृत्त्युपायानुतिष्ठा सा। तस्यां च जातायां तन्निवृत्त्युपायान्तराणामनन्तानामनुष्ठातुमशक्यत्वात् त्वय्येव तदुपायत्वप्रार्थनागर्भतदुपायत्वाध्यवसायरूपाशरणा गतिः अनन्यसाध्ये स्वाभीष्टे महाविश्वासपूर्वकं तदेकोपायतायाश्चाप्रपत्तिः शरणागतिरिति तल्लक्षणात्। ततस्तां व्याजीकृत्य कृपया शरणागतं सर्वेभ्यः पापेभ्यो विमोच्य त्वमेव रक्षसि। तस्मात् सर्वनिदानभूता लज्जापि सर्वकारणस्य तदैवानुग्रहाधीनेति। त्वमेव तादृशीं लज्जां सम्पाद्य तां वा तन्मूलकमन्यद्वा किंचिद्व्याजीकृत्य मां रक्षेति।

सूर्यो यथा स्वकिरणैः स्पृशतीष्टनेष्टं
संशोषयन्न हि करोति कदापि भेदम्।
विस्मृत्य तद्वदगुणम्मम नैजरीत्या
मामुद्धरस्व कृपया जगदीश कृष्ण।।३८।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यथा सूर्यः स्वकीयैः किरणैः इष्टं च नेष्टं च स्पृशति। (सः तं) संशोषयन् कदापि भेदं न हि करोति। तद्वत् नैज्या रीत्या मम अगुणं विस्मृत्य जगदीश कृष्ण! कृपया माम् उद्धरस्व।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

भाषार्थ— जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से अच्छी तथा खराब वस्तु का स्पर्श करता है। वह उन्हें सुखाते हुए कोई विभेद नहीं करता। इसी प्रकार अपनी स्वाभाविक रीति से मेरे अवगुणों को भूल कर हे जगदीश कृष्ण! कृपया मेरा उद्धार कीजिये।।३८।।

विवृत्तिः— सूर्य इति-संशोषयन्-जगत्संशोषं कुर्वन् सूर्यः स्वकिरणैर्यथा इष्टनेष्टं स्पृशति, इष्टं च नेष्टं चानयोः समाहार इष्टनेष्टं नैकधेत्यादिवन्नेष्टमिति। न शब्देन सुप्सुपेति समासः। इष्टनेष्टशब्दौ शुच्यशुचिपरौ, इष्टग्रहणं इष्टान्तार्थं शुचीवाशुच्यपि वस्तु यथा स्पृशतीत्यर्थः। कदाचिदपि भेदं वैषम्यं न करोति। शुच्येव स्पर्शयोग्यं नाशुचीति भेदबुद्धिं न करोतीत्यर्थः। अस्पृश्यतावच्छेदकमप्य-शुचित्वमविगणय्य शुचिवदशुच्यपि यथा स्वकिरणैस्स्पृशतीति यावत्। हि शब्देन सूर्यस्यैतादृशस्वभावत्वस्य लोकप्रसिद्धिर्द्योत्यते। तद्ध तथात्वमपि नैजरीत्या नैज्या स्वीयया रीत्या स्वभावेन न त्यजेयं कथंचन, दोषो यद्यपि तस्य स्यात्, न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवृत्त्या अविज्ञातेत्यादिस्वपरोक्तिसिद्धवात्सल्यस्वभावेनेत्यर्थः। मम अगुणं गुणादन्यं गुणविरोधिनं वा दुर्गुणमित्यर्थः। विस्मृत्य-अनाकलय्य अविचार्येत्यर्थः। यथा श्रुते सर्वज्ञस्य भगवतो विस्मरणासम्भवेनासंगतेः। स्वकृपया मामुद्धरेत्यर्थः। अत्रैवं दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकसमन्वयः— सूर्यस्थानीयो जगन्नायकः अशुचिवस्तुगताशुचित्वस्थानी-यस्स्वीयो दुर्गुणः रविकर्तृकाशुचित्वाकलनाभावस्थानीयो जगन्नाथकर्तृकस्वीयदुर्गुणाकलनाभावः, हिशब्दद्योत्यं यत् सूर्यस्य लोक-प्रसिद्धमस्पृश्यस्पर्शस्वभावत्वं तत्स्थानीयो जगन्नायकस्य

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

वात्सल्यस्वभावत्वं, किरणस्थानीया कृपा, अशुचिवस्तु स्थानीयो मामर्थः। स्पर्शस्थानीया कृपा *विषयतात्वार्थी*। जगत् संशोषणस्थानीयं स्वस्य संसारशोषणरूपोद्धरणमिति।

शोचामि तान्निजगुणानवलोक्य दुष्टान्
पापं करोमि खलु यद्वशगोऽहमद्य।
हृष्यामि ते गुणगणानवलोक्य भव्यान्
मामुद्धरस्व कृपया जगदीश कृष्ण।।३९।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— अहं यद् वशगः खलु पापं करोमि। तान् दुष्टान् निजगुणान् अवलोक्य अद्य शोचामि। ते भव्यान् गुणगणान् अवलोक्य हृष्यामि। जगदीश कृष्ण! कृपया माम् उद्धरस्व।

भाषार्थ— मै जिनके वश में होकर पाप कर्म करता हूँ। उन अपने दुष्ट गुणों को देख कर आज शोक करता हूँ। आपके सुन्दर गुणसमूह को देखकर प्रसन्न होता हूँ। हे जगदीश कृष्ण! कृपया मेरा उद्धार कीजिये।।३९।।

विवृत्तिः— शोचामीति-अहं यद्वशगःयेषां दुर्गुणानां वशम् अधीनतां गच्छतीति तथाभूतः सन् पापं दुःखसाधनं कर्म करोमि। खल्विति प्रसिद्धौ निश्चये वा। तान् दुष्टान् निज- गुणान् = स्वीयान् कामक्रोधादिगुणान् अद्य विपाकावसरे अवलोक्य अनुसन्धाय शोचामि, मम कथमुद्धारः स्यादिति शोचामीत्यर्थः। करोमीति वर्तमाननिर्देशेन दुर्गुणानुसन्धानजन्यशोकदशायामपि प्रसह्य दुर्गुणकारितं पापकर्तृत्वं सूच्यते। अत एव 'यत्सहित' इत्यनुक्त्वा 'यद्वशग' इत्युक्तिः। भव्यान्-रक्षणाय भवन्तीति भव्याः। भव्यगेयेति कर्तरि

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यदन्तो भव्य शब्दो निपातितः। तान् रक्षणैकान्तान् ते तव गुणगणान् दयावात्सल्यादिगुणसमूहानवलोक्य = अनुसन्धाय हृष्यामि रक्ष्यत्वौपयिकगुणलेशहीनमपि मामनालोचित- विशेषलोकशरण्यो भवान् कृपयोद्धरिष्यत्येवेति हर्षं प्राप्नोतीत्यर्थः। यद्यपि भगवान् रक्षत्येव तथापि सर्वज्ञोऽपि हि विश्वेशः सदा कारुणिकोऽपि सन् *संसारतन्त्रं वाहित्वाद्रक्षयिक्षां* प्रतीक्षते। अप्रार्थिनो न गोपायेदित्यादि प्रमाणैरप्रार्थितो न रक्षतीत्यभिप्रयन् रक्षां प्रार्थयते- मामित्यादिना। अत्र शोचामि हृष्यामीति वर्तमाननिर्देशाभ्यां स्वीयदुर्गुणानुसन्धानजन्यशोको भगवद्भव्यगुणानुसन्धानजन्यहर्षश्च सर्वदानुवर्तनीयाविति सूच्यत इत्यवसेयम्।

ज्ञानी न योगनिरतो न हि भक्तिनिष्ठो
वैराग्यलेशसहितो न च धर्मधारी।
प्राप्स्याम्यहं कथमहो तव पादपद्मं
मामुद्धरस्व कृपया जगदीश कृष्ण।।४०।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— (अहं) न ज्ञानी, न योगे निरतः, न भक्त्यां निष्ठा यस्य तथाभूतः, न वैराग्यस्य लेशेन सहितः, धर्मधारी च न अस्मि। अहो अहं कथं तव पादपद्मं प्राप्स्यामि। जगदीश कृष्ण! कृपया माम् उद्धरस्व।

भाषार्थ— मै न ज्ञानी हूँ, न योग में लगा हूँ, न भक्ति में निष्ठा वाला हूँ, न वैराग्य के किसी अंश से युक्त हूँ। न ही धर्म का धारण करने वाला हूँ। ओह! मै किस प्रकार तुम्हारे चरणकमल को प्राप्त कर पाऊँगा। हे जगदीश कृष्ण! कृपया मेरा उद्धार कीजिये।।४०।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विवृत्तिः— ज्ञानीति-ज्ञानी = ज्ञानयोगनिष्ठो नाहमस्मि योगनिरतः नेत्यनुषज्यते। योगी = यमाद्यंगकसमाधिस्तन्निरत स्तदासक्तस्तन्निष्ठोऽपि नास्मीत्यर्थः। न हि भक्तिनिष्ठः भक्तिः- श्रवणकीर्तनादिरूपा तस्यां निष्ठा स्थितिः श्रद्धेति यावत् यस्य सोऽपि नास्मीत्यर्थः। यद्वा भक्तिः प्रेमा तन्निष्ठोऽपि नास्मीत्यर्थः। वैराग्यलेशसहितः— वैराग्यं विषयवैतृष्ण्यं तस्य लेशः ईषदंशः तेनापि सहित ईषद्विषयवैतृष्ण्यवानपि नास्मीत्यर्थः। धर्मान् यागादीन् धरतीति धर्मधारी, धरणं च कर्तृतया विवक्षितं कर्मयोगनिष्ठोऽपि नास्मीत्यर्थः। हिर्हेतौ- यस्मात् केनापि त्वत्प्राप्त्युपायेन रहितोऽहं तस्मादित्यर्थः। अहं न केवलमुपायाभाव एव प्रत्युत तत्प्रतिबन्धकाहंकारादिमानपीत्यर्थः। तव पादपद्मं विधिशिवादीनामपि दुर्लभं त्वच्चरणारविन्दं कथं प्राप्स्यामि। मत्स्वभावनिरीक्षणे त्वत्प्राप्तिर्दुर्लभेत्यर्थः। अहो इत्याश्चर्ये। एवंभूतोऽप्यहं त्वत्पादपद्ममवाप्तुं यदभिलष्यामि तदाश्चर्यमित्यर्थः। प्राप्त्यभावशंकाप्रयुक्ते खेदे वा। तस्मात् परमकारुणिकस्त्वमेव मदुद्धारोपाय इत्याह मामित्यादि।

स्वाभाविकी भवति दाहनशक्तिरग्नेश्-
चन्द्रस्य शैत्यमनिशं वहनं च वायोः।
तद्वत् तवापि पतितोद्धरणं हि नित्यं
मामुद्धरस्व कृपया जगदीश कृष्ण।।४१।।

सुक्षेमा— अन्वयसमासादिः— अग्नेः दाहनशक्तिः स्वाभाविकी भवति। चन्द्रस्य शैत्यं, वायोः अनिशं वहनं च (स्वाभाविकं भवति)। तद्वत् तव अपि हि नित्यं पतितानाम् उद्धरणम्। जगदीश कृष्ण कृपया माम् उद्धरस्व।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trus

भाषार्थ— अग्नि की स्वाभाविक जलाने की शक्ति है। अग्नि की शीतलता तथा वायु का सर्वदा वहन भी (स्वाभाविक है)। इसी प्रकार आपका पतितों का उद्धार करना भी स्वाभाविक है। हे जगदीश कृष्ण! कृपया मेरा उद्धार कीजिये।।४१।।

विवृत्तिः— स्वाभाविकीति-अत्र यथेति योज्यम्। अग्नेर्दाहनशक्तिः, दहनमेव दाहनं-स्वार्थे अण्। तस्य शक्तिः - दहनानुकूला शक्तिरित्यर्थः। यथा स्वाभाविकी स्वभावसिद्धा भवति न त्वन्तराधीनेत्यर्थः। चन्द्रस्य शैत्यमिति। स्वाभाविकीति-लिंगपरिणामे वानुषज्यते। यथा चन्द्रस्य शैत्यं शीतस्पर्शवत्त्वं स्वाभाविकमित्यर्थः। अनिशमित्यादि - यथा च वायोः अनिशं वहनं सदा गतिमत्वं स्वाभाविकमित्यर्थः। तद्वदित्यादि-तद्वत् तथा तवापि परमकारुणिकस्य सर्वशरण्यस्य तवापि पतितोद्धरणं = पतितानां संसारकूपे पतितानाम् उद्धरणं तस्मादुद्धृत्य स्वपादप्रापणं स्वाभाविकं स्वरूपप्रयुक्तम्-अत्र हेतुमाह हि नित्यमिति-हिर्हेतौ। यतो नित्यं कालापरिच्छिन्नम् अतः स्वाभाविकमित्यर्थः। कालापरिच्छिन्नस्य हेत्वनपेक्षणादिति भावः। मामित्यादि-पतितस्य ममानुद्धरणे तव पतितोद्धारकत्व-गुणो हीयेत। अतो मामुद्धृत्य स्वगुणं परिपालयेति भावः।

वेदे पुराणकथने श्रुतवानहं यन्
नित्यं तवेड्यपतितोद्धरणं हि लोके।
इच्छाम्यहं तदवलोकितुमात्मशुद्धौ
मामुद्धरस्व कृपया जगदीश कृष्ण।।४२।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुक्षेमा— अन्वयसमासादिः— हे ईड्य! वेदे पुराणकथने तव लोके नित्यं पतितानाम् उद्धरणम् अहं श्रुतवान्। तत् आत्मशुद्धौ अहम् अवलोकितुम् इच्छामि। जगदीश कृष्ण!, कृपया माम् उद्धरस्व।

भाषार्थ— हे पूज्य! वेदों तथा पुराणों के वचनों में मैने तुम्हारा इस विश्व में पतितों के उद्धार के विषय में सुना है। इस (तथ्य) को मै अपनी आत्मशुद्धि के सन्दर्भ में देखना चाहता हूँ। हे जगदीश कृष्ण! कृपया मेरा उद्धार कीजिये।।४२।।

विवृत्तिः— वेद इति- हे ईड्य! वेदपुराणादिभिः स्तुत्य! वेदे अविगीतप्रामाण्ये वेदे तन्मूलके पुराणकथने पुराणरूपं यत् कथनं प्रबन्धस्तस्मिन्, पुराणस्य सर्ववृत्तस्य कथनरूपे इतिहासे वेति विवक्षितम्। एवं विदिपादं कर्म न श्लिष्यते। *सर्वे नामानः प्रदूयन्ते, वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः। एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसाम्। दुराचारोऽपि सर्वाशी कृतघ्नो नास्तिकः पुरा, समाश्रयेदादिदेवं श्रद्धया शरणं यदि। निर्दोषं विद्धि तं जन्तुं प्रभावात् परमात्मनः। हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः, यदृच्छयाऽपि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः। पावनोऽनलः पाचनः सर्वलोकानां त्वमेव रघुनन्दने-*त्यादि प्रमाणजाते इत्यर्थः। तव नित्यं कालापरिच्छिन्नत्वेन स्वाभाविकं यत् पतितोद्धरणं पतितानामतिपातकिनामपि उद्धरणं पवित्रीकरणं श्रुतवान् अश्रौषं तत् तव पतितपवित्रीकरणं लोके जगति आत्मशुद्धौ विषयसप्तमी। आत्मनः स्वस्य शुद्धिविषये अवलोकितुं सत्यं मिथ्या वेति परीक्षितुमहमिच्छामीत्यर्थः। हिर्हेतौ। यतः परीक्षितुमिच्छामि अतो मां स्वकृपया उद्धरेत्यर्थः। विधौ लोट्।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अन्यथा वेदादेस्त्वद्वचनस्याप्रामाण्यमापद्येत। *अभृतं नोक्त सर्वे मे न मे मोघं वचो भवेदिति* त्वयैवोक्तम्। अतो मामुद्धृत्य स्ववचनं पालयेति भावः।

सम्यग्बभूव यदहं पतिताग्रगण्यस्
त्वं सर्वदोद्धरसि तान् पतिताग्रगण्यान्।
संस्मृत्य रीतिमतुलान्निजचित्तजातां
मामुद्धरस्व कृपया जगदीश कृष्ण।।४३।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— अहं यत् पतितेषु अग्रगण्यः, त्वं सर्वदा तान् पतिताग्रगण्यान् उद्धरसि (तत्) सम्यक् बभूव। अतुलां निजे चित्ते जातां रीतिं संस्मृत्य जगदीश कृष्ण! कृपया माम् उद्धरस्व।

भाषार्थ— मै जो पतितों में अग्रगामी हूँ तथा आप सदा उन पतितों में अग्रगामियों का उद्धार करते हैं, (यह रक्ष्य-रक्षक-सम्बन्ध) ठीक ही है। अपने चित्त में उत्पन्न इस अनुपम विधि को याद करके हे जगदीश कृष्ण! मेरा उद्धार कीजिये।।४३।।

विवृत्तिः — सम्यगिति—अहं पतिताग्रगण्यः पतितेषु अग्रगण्यः, प्रथमगणनीयः, पतितश्रेष्ठ इत्यर्थः, अतिपतित इति यावत्। त्वं पतिताग्रगण्यान् तान्, तच्छब्दो बुद्धिस्थकात्स्न्र्यपरः। कृत्स्नान् जनान् इत्यर्थः। सर्वदा सर्वस्मिन् काले न कालनियम इति भावः। उद्धरसि-पातित्याद् विमोच्य स्वपदं प्रापयसीतिवत्। तत्सम्यग्बभूव अनुगुणमासीत् पतितस्य मम पतितोद्धारकस्य तव च रक्ष्यरक्षकभावसम्बन्धानुकूलमासीदित्यर्थः। तस्मात्तवाहमवश्यं रक्षणीय एवेति भावः। अनेन शरणागत्यन्तरंगभूतो महाविश्वासः फलितः। किं च स्मृत्येति अतुलां निःसमां निजचित्तजातां स्वमनोजन्यां

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

रीतिम्। *सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।* सर्वपापेभ्यो मोक्षयामीत्यादिरूपम्। अनन्यसाधारणं स्वसंकल्पं संस्मृत्य स्वकृपया मां तवास्मीति याचमानं शरणागतं मामुद्धरेत्यर्थः।

तव दया नहि चेदवनीतले
मम समान् जगतीतलपामरान्।
अतिपुनीत दयावशगो हि कः
पतितपावन माधव पाहि माम्।।४४।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— तव दया नहि चेत् अवन्याः तले दयावशगः कः हि मम समान् जगत्याः तले पामरान् अति पुनीत। पतितपावन माधव मां पाहि।

भाषार्थ— यदि आपकी दया न हो तो इस धरतीतल पर कौन दया के वशीभूत होकर मुझ जैसे इस विश्व में नीच व्यक्ति को पवित्र करेगा! पतितों को पवित्र करने वाले माधव! मेरी रक्षा करो।।४४।।

विवृत्तिः—तवेति— तव दया नहि चेत्-त्वं दयालुर्नासीश्चेदित्यर्थः, अवनीतले जगति दयावशगः, कृपापरतन्त्रः त्वदन्यः को हि मम समान्-मत्सदृशान्-तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यामिति षष्ठी। जगतीतलपामरान्-जगतीतले पृथ्वीतले पामरा अज्ञाः कृत्याकृत्यविवेकरहिताः पापिन इत्यर्थः। कृत्स्नान् पामरानिति यावत्। सप्तमीति योगविभागात् समासः। अति पुनीत अतीव पवित्रीकुर्वीत। अत्युपसृष्टात् पूञो लिङ्यात्मनेपदम्। त्वदन्यः पतितपावनो न श्रुतदृष्टपूर्व इत्यर्थः। पतितपवित्रीकरणफलोत्कर्षस्य कर्तृगामित्वाभिप्रायेणात्मनेपदम्। अतः पतितपावनस्त्वमेवेति

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Tru

सम्बोधयति-पतितपावनेति। लक्ष्म्या विशिष्टस्यैव रक्षकत्वमित्यभिप्रयन् सम्बोधयति-माधवेति। तथा च वैष्णवं वचः 'लक्ष्म्या सह हृषीकेशो देव्या कारुण्यरूपया। रक्षकः सर्वसिद्धान्ते वेदान्तेषु च गीयते' इति। मां पाहि-एवंभूतस्त्वमेव अतिपामरं पापिनं मां रक्ष नान्या गतिरित्यर्थः। इतः प्रभृति चतुर्दशश्लोक्यां द्रुतविलम्बितं छन्दः। द्रुतविलम्बितमाह नभौ भराविति तल्लक्षणात्।

सकलकारणकारणकारणः
पतिततारणतारणतारणः।
निखिलभावनभावनभावनः
पतितपावन माधव पाहि माम्।।४५।।

सुक्षेमा— यहाँ से श्लोक ४९ तक यमक अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है। क्योंकि यहाँ साहित्य दर्पण १०-८ का 'सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यंजनसंहतेः' यह लक्षण घटित होता है। यहाँ भिन्न अर्थ वाले स्वर व्यंजन समूह की आवृत्ति की गई है।

अन्वयसमासादिः— सकलानां कारणानां कारणानां कारणः।

पतितता एव रणं तस्मात् तारणं तस्य तारणः (पतितता +रण + तारण + तारणः)। अथवा - पतितानां तारणं तेषां या तारणता तस्या अरणः। (पतित + तारण + तारणता + अरणः)

निखिलाः भावनाः येषाम्। अथवा -निखिला ये भावनाः तेषां यद् भावनं तस्मिन् भावना यस्य सः। (निखिल + भावन +भावन + भावनः)। अथवा - निखिलानां भावानां ये नभाः तेषाम् अवनं तस्य भावनः (निखिल + भाव + नभ + अवन + भावनः)।

पतितपावन माधव! मां पाहि।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

भावार्थ— सम्पूर्ण भौतिक पदार्थों का कारण महत् या बुद्धि इत्यादि, उनका भी कारण प्रकृति, उनका भी कारण ईश्वर है। अथवा— सम्पूर्ण विश्व का कारण ब्रह्मा, उसका भी कारण अनिरुद्ध उसका भी कारण ईश्वर है।

रण या संग्राम के समान (भयंकर) जो पतितता या पतन उससे उत्तरण को तारण या प्राप्त कराने वाला ईश्वर है। अथवा— पतितों को तारने वाले जो गंगा इत्यादि उनका जो तारणत्व धर्म उसे अरण या प्राप्त कराने वाला ईश्वर है।

सम्पूर्ण कर्म तथा ब्रह्म के विचार वाले लोग अथवा सम्पूर्ण भक्त जन, उसका जो रक्षण, उसके प्रति विचार वाला ईश्वर है। अथवा— सम्पूर्ण भाव अर्थात् जगत् के जो नभ अर्थात् हिंसक लोग उनके अवन या हिंसन के प्रति भावन या विचार वाला ईश्वर है।

हे पतितों को पवित्र करने वाले माधव! मेरी रक्षा करो।

अनुशीलन— संस्कृत में अव धातु का प्रयोग वैदिक काल से ही रक्षा करने या आनन्द देने अर्थ में होता रहा है। महाकवि कालिदास द्वारा भी शाकुन्तल के प्रथम श्लोक — 'प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः, में अवतु का 'रक्षा करो' यही अर्थ है। पर धातुपाठ में १८ अर्थों में से एक अर्थ 'हिंसा' भी माना है। अतः विवृत्तिकार ने उसका ही सहारा लेते हुए 'अवन' का अर्थ हिंसा किया है।।४५।।

विवृत्तिः— सकलेति- सकलकारणकारणकारणः — सकलानां भूतभौतिकानां कारणानि महदादीनि तेषां कारणं प्रकृतिः, तस्यापि कारणभूत इत्यर्थः। तथा च भारते-*नारायणो जगन्मूर्तिरनन्तात्मा सनातनः। तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तमेति*। सूत्रितं च-

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trus

ज्योतिरुपक्रमा तु तथा त्वधीयत एके[१] इति। यद्वा सकलस्य जगतः कारणभूतश्चतुर्मुखः, तस्य कारणभूतोऽनिरुद्धः तस्यापि कारणभूत इत्यर्थः। पतिततारण-तारण तारणः- पतिततैव रणं रणवत् भयंकरत्वात् तस्मात् तारणं, तरणमेव तारणम् उत्तरणं तस्य तारणः प्रापकः तरतिः प्राप्तिवचनः, वेदान्तं तरतीतिवत् हेतुरित्यर्थः। यद्वा पतितानां तारणानि यानि गंगादीनि तेषां या तारणता पतितोत्तारणत्वरूपो धर्मः तस्या अरणः-प्रापक इत्यर्थः। अगतावित्यस्मात् बहुलग्रहणात् कर्तरि ल्युट्। नन्द्यादित्वाद्वा कर्तरि ल्युः। गंगादीनामपि पतिततानिवर्तकत्वं भगवत्- सम्बन्धाय तमेवेति भावः। निखिलभावनभावनभावनः— निखिला भावनाः कर्मभावना, ब्रह्मभावनोभयभावना येषां ते निखिलभावनाः यद्वा- भावयन्ति स्वं ध्यायन्तीति भावनाः। निखिला भावनाः कृत्स्नाः स्वभक्ता इत्यर्थः। तेषां भावनं सत्तानुवर्तनं रक्षणमिति यावत्। तस्मिन् भावना विचारो यस्य स तथोक्तः। तद्रक्षणतत्पर इत्यर्थः। यद्वा निखिलानां भावनं सत्तानुवर्तनं तद्भावयतीति तद्विषयिणी भावना संकल्पो यस्य स तथोक्तः। जगद्रक्षणसंकल्पाश्रय इत्यर्थः। अथवा भावशब्देन जगदुच्यते। निखिला ये भाव-नभाः जगद्धिंसकाः रावणकंसादयो दुष्टा नभ हिंसायामित्यस्मात् पचाद्यच्। तेषाम् अवनं हिंसनं, अवतेर्हिंसार्थत्वात् निग्रह इत्यर्थः। तेषां निग्रहोऽपराध- शान्त्यर्थत्वादनुग्रह एवेति। श्लिष्टेनावनशब्देन हिंसोपादानस्य भावः, तद्भावयतीति तथाभूतः। पूर्ववल्ल्युड् वा, ल्युर्वा। निग्रहव्याजेन दुष्टानामपि रक्षणोद्यत इत्यर्थः। हे पतितपावन माधव! एवम्भूतस्त्वं मां पाहि इत्यर्थः।

---

१. ब्रह्मसूत्रम् १.४.९

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विपुलजीवनजीवनजीवनो
जनविलोपनलोपनलोपनः।
विशदकामदकामदकामदः
पतितपावन माधव पाहि माम्।।४६।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— विपुलं जीवनं यस्य स तथाभूतः यो जीवनः स जीवनः यस्य। अथवा तं (जीवनं) जीवयति इति जीवनः।

जनान् विलोपयति इति जनविलोपनः तस्य यत् लोपनं तस्य लोपनः। अथवा— जनानां विलोपनानां यत् लोपनं तं लोपयति तथाभूतः।

विशदाः कामाः येषां तथाभूतानां च दानां च ये कामदाः तेषां कामदः। (विशद +काम + द + कामद + कामदः) पतितपावन माधव! मां पाहि।

भाषार्थ— विपुल अर्थात् परार्ध काल तक जीवन वाले जो जीवन अर्थात् ब्रह्मा उनको भी जीवन प्रदान करने वाले जगदीश्वर।

जन अर्थात् प्राणियों के विलोपन अर्थात् संहार करने वाले जो रुद्र उनके लोपन या संहारक शक्ति के लोपन अर्थात् रोपण या स्थापित करने वाले ईश्वर।

अथवा— प्राणियों के विलोपनं या हिंसा करने वाले जो दानव इत्यादि उनके लोपन या हिंसन शक्ति को लोपन या नष्ट करने वाले जगदीश्वर।

विशद या निर्दोष कामनाओं वाले तथा द अर्थात् दाता या उदार लोगों के कामद अर्थात् कामनाओं को पूरा करने वाले जो जागतिक गो आदि पदार्थ उनके भी कामद या कामनाओं को पूरा करने वाले ईश्वर।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अथवा— विशद कामनाओं वाले तथा द अर्थात् हवि प्रदान करने वाले यजमानों के कामद या कामनाओं की पूर्ति करने वाले जो इन्द्र इत्यादि उनके भी कामद या कामनाओं को पूरा करने वाले जगदीश्वर, पतितों को पवित्र करने वाले माधव! मेरी रक्षा करो

अनुशीलन— यहाँ विवृत्तिकार ने 'रलयोरभेदः' के नियमानुसार 'लोपन' का अर्थ 'रोपण' या 'स्थापित करना' किया है। इस नियम का अर्थ यह है कि रेफ तथा लकारयुक्त शब्द अर्थ की दृष्टि से परस्पर अभिन्न होते हैं। अतः इस नियम के अनुसार नष्ट करने अर्थ में ही लोपयति के साथ-साथ रोपयति का प्रयोग भी वैदिक साहित्य में प्राप्त है— यज्ज्यायोऽवद्येद् रोपयेत् तद् यज्ञस्य (तैत्तिरीय संहिता २.६.८.४)। अतः 'नष्ट करना' अर्थ वाला 'लोपयति' शब्द 'नष्ट करना' अर्थ वाले रोपयति शब्द से अभिन्न तो है। पर 'नष्ट करना' अर्थ वाला 'लोपयति' शब्द बढ़ने अर्थ वाले 'रोपयति' से अभिन्न नहीं हो सकता। संस्कृत साहित्य में भी कहीं लोपन को रोपण से अभिन्न मानते हुए लोपन का बढ़ना अर्थ नहीं किया है। अतः यहाँ विवृत्तिकार द्वारा लोपन का रोपण अर्थ करना चिन्त्य है।।४६।।

विवृत्तिः— विपुलजीवनेति— विपुलजीवनजीवनजीवनः- विपुलम्-अधिकं द्विपरार्धकालपरिमितं जीवनं यस्य स विपुलजीवनः तथाभूतो यो जीवनः, चतुर्मुखः स जीवनः पुत्रो यस्य तं जीवयतीति वा तथोक्तः। जगत्स्रष्टुश्चतुर्मुखस्यापि स्रष्टेत्यर्थः। पुत्रे जीवे च जीवन इति विश्वः। जनविलोपनलोपनलोपनः— जनान् विलोपयतीति जनविलोपनो जगत्संहारको रुद्रः, तस्य यल्लोपनं तत्कर्तृकं संहरणं तस्य यल्लोपनः = रोपणः रलयोरभेदस्मरणात्। रोपयतीति रोपणस्थापकः जगत्संहारकस्य रुद्रस्य संहारकत्वशक्तिप्रद इत्यर्थः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यद्वा जनविलोपना: - जननाशका: - जगद्धिंसका दैत्यदानवादय: तेषां यल्लोपनं तत्कर्तृकं जगद्धिंसनं तल्लोपयतीति तथोक्त:। दुष्टान् विनाश्य साधुरक्षक इत्यर्थ:। विशदकामदकामदकामद: - विशदा: व्यक्ता: अनाद्याविर्भूता: कामा:। एताँश्च सत्यान् कामानिति श्रुत्युक्ता अपहतपाप्मत्वादिकल्याणगुणा यस्य स विशदकाम:। यद्वा विशदा उज्ज्वला निर्दुष्टा: कामा: काम्यन्त इति कामा:। सत्यकाम इति श्रुत्युक्ता भोग्यभोगोपकरणादय: यस्य स विशदकाम:। दकामदकामद: दा दातार: लोके य उदारा: तेषां कामदा: अभीष्टार्थप्रदा: कामतनुधेन्वादय:। यद्वा दा दातारो हविर्दातारो यष्टार इत्यर्थ:, तेषां कामदा: फलप्रदा: इन्द्रादय: तेषामपि कामद: अभीप्सितार्थप्रद:, भगवद्दत्तैरेव कामैरन्येऽप्यन्येभ्य: कामान् ददतीत्यर्थ:। द: कलत्रे बुधै: प्रोक्तो दानच्छेदन- दातृष्विति विश्व:। हे पतितपावन माधव! एवम्भूतस्त्वं मां पाहीत्यर्थ:।

दुरितवर्तनिवर्तनवर्तन:
शुचिप्रवर्तनकर्तनकर्तन:।
जगति नर्तननर्तननर्तन:
पतितपावन माधव पाहि माम्।।४७।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादि:— दुरितानां य: वर्त: तस्य निवर्तनस्य वर्तनं यस्य स:। (दुरित + वर्त + निवर्तन + वर्तन:) शुचि प्रवर्तयन्ति इति शुचिप्रवर्तनानि। अथवा शुचीनां प्रवर्तनानि तेषां ये कर्तना: तेषामपि कर्तन:।

जगति नर्तनै: नर्तनम्। अथवा नर्तनान् नर्तयतीति नर्तननर्तनं तस्यापि नर्तन:। अथवा— जगति नर्तयतीति नर्तनं तस्य नर्तन: तस्यापि नर्तन:। पतितपावन माधव! मां पाहि।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

भाषार्थ— दुरित या पापों की वर्त अर्थात् स्थिति का निवर्तन या निवारण का ही वर्तन या स्वभाव है जिसका ऐसा जगदीश्वर।

शुचि या पवित्रता का प्रवर्तन करने वाले जो भगवद् भजन। अथवा-शुचि अर्थात् पवित्र भक्तों के प्रवर्तन अर्थात् भक्ति के कार्य उनके जो कर्तन अर्थात् नाश करने वाले जो विरोधी हैं, उनका कर्तन अर्थात् विनाशक ईश्वर।

इस विश्व में नर्तन अर्थात् नचाने वाले जो विषय, उनके द्वारा नर्तन अर्थात् नचाने वाला जो मायात्मक (त्रिगुण) द्रव्य उनका भी प्रेरक। अथवा— इस विश्व में नर्तन अर्थात् भ्रान्त होने वाले मनुष्य उनको नर्तन या नचाने वाली जो माया उनका भी प्रेरक ईश्वर। अथवा— इस विश्व में नर्तन अर्थात् सूर्य आदि ग्रहों को नचाने वाला शिशुमार चक्र उसका नर्तन या नचाने वाला ध्रुव उसका भी नर्तन या प्रेरक ईश्वर।

पतितों को पवित्र करने वाले माधव! मेरी रक्षा करो।

अनुशीलन— पुराण में ९ ग्रहों के अन्तर्गत सूर्य आदि को ग्रह माना गया है। उसे नचाने वाला शिशुमार (एक जलजन्तु) की आकृति का एक तारासमूह है, जो कि वस्तुतः विष्णु का ही एक रूप है—

तारामयं भगवतः शिशुमाराकृति दिवि रूपं हरेः

—विष्णु पुराण २.९.१

उस शिशुमार का प्रेरक ध्रुव या बीच का स्थान है। क्योंकि वही समूचे शिशुमार का आधार है। उसका भी प्रेरक जगदीश्वर है। श्रीमद्भागवत के ५.२३.४ में भी इसका वर्णन है।।४७।।

विवृत्तिः— दुरितवर्तेति— दुरितवर्तनिवर्तनवर्तनः— दुरितेषु दुरितानां वा वर्तो वृत्तिर्भावे घञ्-स्थितिरित्यर्थः। तस्य निवर्तनं

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

निवारकं विमोचकं वर्तनं वृत्तिः स्वभावो, निवर्तने विमोचने वर्तनं स्थितिर्वा यस्य स तथोक्तः। आश्रितपापविमोचक इत्यर्थः। शुचिप्रवर्तनकर्तनकर्तन:- शुचि शुचित्वं भावप्रधानो निर्देशः। तत्प्रवर्तयत्ति प्रयोजयन्तीति शुचि प्रवर्तनानि भगवद् भजनादीनि। यद्वा शुचीनां भगवद्भजनादीनां प्रवर्ताः भगवद्भक्ताः तेषां लोके प्रवर्तनं वा तेषां तस्य वा कर्तनाः छेदकाः विरोधिनः तेषां कर्तनः छेदनः दुष्टनिग्रहकर्तेत्यर्थः। अत्र शुचिप्रवर्तनेत्यत्र संयुक्तपूर्वस्य चकारेकारस्य गुरुत्वाच्छन्दोभङ्गो न शंकनीयः। हे प्रे वेति प्र पूर्वस्य लघुत्वविकल्पनात्। जगति नर्तन नर्तन नर्तनः - नर्त्यन्ते भ्राम्यन्ते एभिरिति नर्तनानि नर्तनकारणभूता विषयाः। जगति जनान् तैर्नर्तयति - इहामुत्र भ्रामयतीति नर्तननर्तनं मायात्मकं त्रिगुणद्रव्यम्। यद्वा नृत्यन्ति भ्राम्यन्तीति नर्तनाः जनाः तान्नर्तयति इहामुत्र भ्रामयतीति नर्तननर्तनं तदेव द्रव्यं तस्यापि नर्तनः नर्तकः प्रेरक इत्यर्थः। भगवत् प्रेरितैव माया संसारिण इहामुत्र भ्रामयतीति भावः। अथवा जगति नर्तयति सूर्यादिग्रहान् भ्रामयतीति नर्तनं शिंशुमारचक्रं तस्य नर्तनो भ्रामको ध्रुवः, शिंशुमारचक्रस्य तत्कराधारत्वात् तस्यापि नर्तनः प्रेरक इत्यर्थः। हे पतितपावन माधव एवंभूतस्तत्वं मां पाहीत्यर्थः।

हृदयहर्षणहर्षणहर्षणो
मनुजकर्षणकर्षणकर्षणः।
अवनिपोषणपोषणपोषणः
पतितपावन माधव पाहि माम्।।४८।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुक्षेमा- अन्वयसमासादिः— हृदयं हर्षयन्ति इति हृदयहर्षणाः तेषां यद् हर्षणं तस्य हर्षणः।

मनुजान् कर्षयन्ति इति मनुजकर्षणाः तेषां कर्षणः तस्यापि कर्षणः।

अवनिं पुष्णन्ति इति अवनिपोषणाः तेषां यत् पोषणं तस्यापि पोषणः। अथवा— अवनेः पोषणाः तेषामपि पोषणाः तेषामपि पोषणः। (अवनि + पोषण + पोषण + पोषणः)

पतितपावन माधव मां पाहि।

भाषार्थ— हृदय को हर्षित करने वाले जो पुत्र मित्र आदि उनका जो हर्षण या आनन्दरूप धर्म उसे भी हर्षण अर्थात् प्रेरित या प्रदान करने वाला ईश्वर।

मनुष्यों को कर्षित या वश में रखने वाले जो मृत्यु इत्यादि उनको भी कर्षण अर्थात् खींचने वाला काल उसका भी कर्षण वश में रखने वाला ईश्वर।

अवनि या धरती को पुष्ट करने वाले जो पृथु इत्यादि, उनका जो पोषण या पोषकत्व उसका भी पोषण या प्रदान करने वाला ईश्वर । अथवा— धरती को पुष्ट करने वाले राजा इत्यादि, उनको भी पुष्ट करने वाले दिक्पाल, उन्हें भी परिपुष्ट करने वाला। अथवा— धरती को पुष्ट करने वाला मेघ, उनको पुष्ट करने वाला इन्द्र उसे भी परिपुष्ट करने वाला ईश्वर।

पतितों को पवित्र करने वाले माधव! मेरी रक्षा करो।

अनुशीलन— महाभारत के अनुसार सर्व प्रथम वेन के पुत्र पृथु ने इस धरती को परिपुष्ट किया था। इस प्रकार उन्होंने विविध प्रकार के शस्यों का दोहन किया। ऐसा करने पर यह धरती सही अर्थों में पृथिवी

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

बनी तथा राजा पृथु सही अर्थों में इस पृथिवी के अधिपति बने। द्रष्टव्य- पृथुं वैन्यं नृपवरं पृथिवी यस्याभवत् सुता। प्रजापतिं सार्वभौमं कीर्तयेद् वसुधाधिपम्-महाभारत १३.१६५.५५। प्रायः इसी प्रकार का वर्णन अथर्ववेद ८.१३.११-१२ में भी प्राप्त है। श्रीमद्भागवत में चतुर्थ स्कन्ध के १४ वें अध्याय से २४ अध्याय तक बड़े विस्तार से इसका वर्णन है।।४८।।

विवृत्तिः—हृदयहर्षणेति— हृदयहर्षणहर्षणहर्षणः — हृदयं चित्तं हर्षयन्तीति हृदयहर्षणाः पुत्रमित्रकलत्रादयः, तेषां यद्धर्षणं हर्षकत्वं प्रियत्वमिति यावत् तस्य हर्षणः प्रयोजकः पाकं पचतीतिवन्निर्देशः। लौकिकप्रियवस्तूनां पुत्रमित्रकलत्रवित्तादीनां प्रियत्वापादक इत्यर्थः। *न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवती*[१]त्यादि श्रुत्यर्थोऽत्रानुसन्धेयः। मनुजकर्षणकर्षणकर्षणः— मनुजा मानवाः। उपलक्षणमेतत्। संसारिण इत्यर्थः। तान् कर्षयन्ति आकर्षयन्ति स्ववशान् कुर्वन्तीति तत्कर्षणाः मृत्युप्रभृतयः, तानपि कर्षयतीति तत्कर्षणः कालः, तस्यापि कर्षण आकर्षकः, तमपि स्ववशं कुर्वन्नित्यर्थः। जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरमित्यादिकमत्र मानम्। अवनिपोषणपोषणपोषणः - अवनिं पुष्णन्तीत्यवनिपोषणाः पृथुमनुप्रभृतयः तेषां यत् पोषणं तत्कर्तृकं जगद्रक्षणं तत्पोषकः। पूर्ववत् पाकं पचतीतिवन्निर्देशः। प्रयोजक इत्यर्थः। यद्वा अवनिपोषणाः राजानः तत्पोषणा दिक्पालाः तेषामपि पोषण इत्यर्थः। अथवा

---

१. बृहदारण्यकोपनिषद् ४.५.६

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अवनिपोषणा घनास्तत्पोषण इन्द्रस्तस्यापि पोषण इत्यर्थः। हे पतितपावन माधव एवंभूतस्त्वं मां पाहीत्यर्थः।

सकलगोकुलगोकुलगोकुलः
सकलगोकुलगोकुलगोकुलः।
सकलगोकुलगोकुलगोकुलः
पतितपावन माधव पाहि माम्।।४९।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— सकलानां गोकुलानि तानि गच्छति इति सकलगोकुलगः। उश्च कुश्च उकू, ताभ्यां लगति इति उकुलगः। न विद्यते कुलं यस्य स अकुलः। सकलगोकुलगश्च उकुलगश्च अकुलश्च इति तथाभूतः। (सकल + गोकुल + ग + उ + कु + लग + अ + कुलः)

सकलश्च गौश्च तौ कुले यस्य स सकलगोकुलः। गावः कुलं यस्य सः। गौरिव कुल यस्य सः। सकलगोकुलश्च गोकुलश्च गोकुलश्च इति तथाभूतः। (सकल + गोकुल + गोकुल + गोकुलः)

सकलानि यानि गोकुलानि गोकुले तानि गच्छति इति सकलगोकुलगोकुलगः। कौ लः न विद्यते यस्माद् असौ अकुलः। सकलगोकुलगोकुलगश्च अकुलश्च इति तथाभूतः। (सकल + गोकुल + गोकुल + ग + अ + कु + लः)।

भाषार्थ— सम्पूर्ण लोगों के जो गोकुल अर्थात् इन्द्रियसमूह उनमें प्रवेश करने वाले हृषीकेश। ऊ अर्थात् लक्ष्मी, कु अर्थात् भू देवी उनसे लग या सम्बद्ध ईश्वर। साथ ही किसी भी कुल या गोत्र से विहीन ईश्वर।

सकल अर्थात् सभी कलाओं वाले चन्द्र, गौ अर्थात् सूर्य कुल वाले। गो अर्थात् जल को कुल या स्थान प्रदान करने वाले। गो अर्थात् सूर्य के समान कुल या देह वाले ईश्वर।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

गायों के समूह वाले सम्पूर्ण 'गोकुल' नामक स्थानों में ग या विचरण करने वाले। जिनसे कु अर्थात् धरती में कोई ल या डर नहीं है अर्थात् धरती में भय को मिटाने वाले ईश्वर।

पतितों को पवित्र करने वाले माधव! मेरी रक्षा करो।

अनुशीलन— विवृत्तिकार ने इस श्लोक के प्रथम तथा तृतीय चरण के अन्तिम शब्द का 'अकुल' इस प्रकार विग्रह किया है। तब तो अन्तिम शब्द की 'गाकुल:' इस प्रकार सन्धि होगी। ऐसी दशा में यमक अलंकार में एक अक्षर का ह्रास होगा। इससे बचने के लिये यहाँ 'उकुल:' इस प्रकार विग्रह माना जा सकता है। वैदिक साहित्य में 'उ' भी निषेध अर्थ में प्रसिद्ध रहा है। जैसा कि अथर्ववेद ८.६.१५ में 'उरुण्ड' शब्द में देखा गया है। यहाँ 'उ' का विहीन अर्थ मानते हुए सायणाचार्य ने रुण्ड विहीन अर्थ किया है।।४९।।

विवृत्तिः— सकलगोकुलेति— सकलगोकुलग: सकलानां जनानां यानि गोकुलानि इन्द्रियसमूहा: तानि गच्छति अन्तर्यामितया प्रविशतीति सकलगोकुलग:— सकलज्ञानेन्द्रियनियन्ता हृषीकेश इत्यर्थ:। उकुलग: - उर्लक्ष्मी:। अकारेणोच्यते विष्णु: श्रीरुकारेण चोच्यते इति स्मरणात्। कु: पृथिवी-भूदेवी। उश्च कुश्च उकू ताभ्यां लग: सम्बद्ध:, श्रीभूदेवीभ्यामाश्लिष्ट इत्यर्थ:। लगे संगे इत्यस्मात् पचाद्यच्। सकलगोकुलगश्चासावुकुलगश्चेति तथोक्त:। अकुल: न विद्यते कुलं गोत्रं यस्य स तथोक्त:। तथा च श्रूयते अगोत्रमिति। सकल- गोकुलगोकुलगोकुल:— सकल: कलासहित: कलानिधिश्चन्द्र: गौ: सूर्य: गौर्नादित्य इति मेदिनी। तौ कुले यस्य स सकलगोकुल:। चन्द्रसूर्यान्वये अवतीर्ण इत्यर्थ:। गोकुल: गाव आप: भूवाग्वारिषु

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Tru

गौर्मतेति विश्वः। ताः कुलं गृहं स्थानं यस्य स तथोक्तः। कुलं जनपदे गृह इति विश्वः। नारायण इत्यर्थः। तथा च स्मर्यते-आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणस्स्मृत[1] इति। गोकुलः गौः सूर्य इव कुलं देहो यस्य स तथोक्तः। सजातीयगणे गोत्रे देहेऽपि कथितं कुलमिति विश्वः। सूर्यवद्देदीप्यमानदिव्यमंगलविग्रहविशिष्ट इत्यर्थः। तथा च श्रूयते *आदित्यवर्णं तमसस्तु पारे* इति। सकलगोकुलश्चासौ गोकुलश्च स चासौ गोकुलश्चेति विग्रहः। सकलगोकुलगोकुलगः = गोकुलं गोकुलनामा स्थानविशेषः तस्मिन् गोकुलानि गोसमूहाः। सकलानि यानि गोकुलगोकुलानि। समूहसाकल्याभिप्रायः सकल शब्दः। तानि तैर्वा गच्छतीति तथोक्तः। अकुलः = कौ पृथिव्या लो = भयं कुलं = संसारभयमित्यर्थः। लश्शेषे च भये चैव कथित-स्सर्वसूरिभिरिति विश्वः। स न विद्यते यस्मादसावकुलः संसारभयनिवर्तको मोक्षप्रद इत्यर्थः। हे पतितपावन माधव एवम्भूतस्त्वं पाहीत्यर्थः।

निबिडनीरदसन्निभमद्भुतं
विपुलचारुचतुर्भुजशोभितम्।
जनदयापरिपूर्णशरीरकं
तमवलोकितुमुत्सहते मनः।।५०।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— निबिडः यः नीरदः तेन सन्निभम् अद्भुतं, विपुलैः चारुभिः चतुर्भुजैः शोभितं, जनेषु या दया तया परिपूर्णं शरीरं यस्य तम् अवलोकितुं मे मनः उत्सहते।

---

१. मनुस्मृति १.१०

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

भाषार्थ— घने मेघ के सदृश, अद्भुत, विशाल सुन्दर चार भुजाओं (चार प्रकार के विषय प्रदान करने से चार भुजा जैसी लगने वाली) से सुशोभित, संसारी लोगों के प्रति जो कृपा उससे परिपूर्ण शरीर वाले-उनको देखने के लिये मेरा मन उत्क़ण्ठित होता है।।५०।।

विवृत्तिः— भगवतो जगन्नायकस्य दिव्यमंगलविग्रहसौन्दर्यमनुस्मरन् तद्दर्शनौत्कण्ठ्यमाह-निबिडनीरदेति-निबिडनीरदसन्निभं निबिडः जलसान्द्रः नीरदो मेघः तत्सन्निभं तत्सदृशं तत्सदृशदिव्यमंगलविग्रहमित्यर्थः। अद्भुतम्-अत्याश्चर्यम्-अचिन्त्यशक्तिमित्यर्थः। विपुलचारुचतुर्भुजशोभितम्-विपुलैः विस्तृतैराजानुलम्बिभिश्चारुभी रमणीयैश्चतुर्भिर्भुजैः शोभितं प्रकाशमानं चतुर्विधप्रदत्वाभिव्यंजकचतुर्भुजभासमानमित्यर्थः। जनदयापरिपूर्णशरीरकं = जना जनिमन्तो ये संसारिणः तेषु या दया तद्विषयिणी कृपा तदीयसांसारिक दुःखनिराचिकीर्षेत्यर्थः। तया परिपूर्णं शरीरं दिव्यमंगलविग्रहो यस्य तथाभूतस्तमित्यर्थः। यद्यपि दयाया आत्मधर्मत्वमेव न शरीरधर्मत्वं तथापि इह लोके शुभाश्रयदिव्यमङ्गलविग्रहप्रकटीकरणस्य दयाकार्यत्वेन दयापरिपूर्णत्वोक्तिरिति ध्येयम्। एवंभूतं प्रसिद्धं बुद्धिगोचरं जगन्नायकं मनः मदीयं चेतः अवलोकितुं साक्षात्कर्तुमुत्सहते-उत्साहवद्भवति, सोत्कण्ठं भवतीत्यर्थः। यद्यप्यचेतनस्य मनसो न कर्तृत्वसम्भवः, तथापि करणे कर्तृत्वोपचारो 'जिह्वे कीर्तय केशवं मुररिपुं चेतो भज श्रीधरम्' इत्यादावभियुक्तैः क्रियत इति नानुपपत्तिः। यद्यपि चक्षुषैव साक्षात्कारो न मनसा तथापि चक्षुःप्रवृत्तेर्मनःप्रवृत्त्यधीनत्वेन मनस एव साक्षात्कारहेतुत्वमिति नानुपपत्तिरित्यवसेयम्।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

ज्वलितरत्नविभासविभासितं
मुकुटमण्डितमस्तकमिष्टदम्।
सुभगकुण्डलमण्डलगण्डकं
तमवलोकितुमुत्सहते मनः।।५१।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— ज्वलितानां रत्नानां विभासेन विभासितम्। अथवा - ज्वलितानि रत्नानि विभासेन विभासितानि यस्य तम्। मुकुटेन मण्डितं मस्तकं यस्य। अथवा मुकुटं मण्डितं येन तथाभूतं मस्तकम् इष्टदम्। सुभगे ये कुण्डले मण्डले ताभ्यां शोभमानौ गण्डौ यस्य तम्। अथवा- सुभगे कुण्डलमण्डले याभ्यां तथाभूतौ गण्डौ यस्य तम् अवलोकितुं मे मनः उत्सहते।

भाषार्थ— प्रदीप्त रत्नों के प्रकाश से प्रकाशित, अथवा दीप्ति से प्रकाशित उज्ज्वल रत्नों वाला। मुकुट से मण्डित मस्तक वाला, अथवा ऐसा मस्तक जिसके द्वारा मुकुट सुशोभित हुआ है, इस प्रकार का जो इष्ट या चारों पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला। सुन्दर तथा मण्डल आकार वाले जो कुण्डल उनसे सुशोभित कपोल वाला। अथवा- मण्डल आकार वाले कुण्डल जिसके द्वारा सुशोभित हैं .ऐसे कपोलों वाले को देखने के लिये मेरा मन उत्कण्ठित होता है।।५१।।

विवृत्तिः— ज्वलितरत्नेति-ज्वलितरत्नविभासविभासितम् ज्वलितानां दीप्यमानानां रत्नानां विभासेन दीप्त्या विभासितं दीप्यमानमित्यर्थः। यद्वा ज्वलितरत्नानि विभासविभासितानि विभासेन स्वीयदिव्यमंगलविग्रहदीप्त्या विभासितानि-प्रकाशितानि यस्य स तथोक्तमित्यर्थः। मुकुटमण्डितमस्तकम्-मुकुटेन किरीटेन

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

मण्डितमलंकृतं मस्तकं शिरो यस्य, मुकुटं मण्डितं येन तथाभूतं मस्तकमिति वा । तथाभूतम् इष्टदम् इष्टान् चतुर्विधपुरुषार्थान् ददातीति तथाभूतम्। सुभगकुण्डल-मण्डलगण्डकम् = सुभगे-सुन्दरे भगः श्रीर्ययोस्ते कुण्डल-मण्डले-मण्डलाकारे कुण्डले मकराकारकुण्डले इत्यर्थः। ताभ्यां शोभमानौ गण्डौ कपोलौ यस्य स तथाभूतं। शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपः। सुभगे कुण्डलमण्डले याभ्यां तथाभूतौ गण्डौ यस्येति वा तं मनोऽवलोकितुमुत्सहते। पूर्ववदर्थः।

स्मितमुखं सरसीरुहलोचनं
रुचिरनासिकया परिराजितम्।
अतिविशालसुभालविशोभितं
तमवलोकितुमुत्सहते मनः।।५२।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— स्मितेन विलसितं मुखं यस्य तम्। सरसीरुहे इव लोचने यस्य तम्। रुचिरया नासिकया परिराजितम्। अतिविशालेन शोभनेन भालेन विशोभितं तम् अवलोकितुं मे मनः उत्सहते।

भाषार्थ— मन्द हास्य से सुशोभित मुख वाले, कमल के समान नेत्रों वाले, सुन्दर नासिका से विराजित, अतिविशाल सुन्दर ललाट से सुशोभित जगन्नायक को देखने के लिये मेरा मन उत्कण्ठित होता है।।५२।।

विवृत्तिः— स्मितमुखमिति-स्मितमुखं-स्मितेन मन्दहासेन विलसितं मुखं यस्य तं मध्यमपदलोपी समासः। सरसीरुहलोचनं आयतत्वप्रसन्नत्वादिगुणैः सरसीरुहे कमले इव लोचने यस्य तम्।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

रुचिरनासिकया रुचिरया उन्नतत्वादिगुणै रमणीयया नासिकया परिराजितं प्रकाशमानम्। अतिविशालसुभालविशोभितम् = अतिविशालेन अतिविस्तृतेन सुभालेन सुन्दरेण ललाटेन विशोभितं विशेषेण भासमानन्तं जगन्नायकं मनोऽवलोकितुमुत्सहत इत्यर्थः।

उरसि हारविहारमनोहरं
तुलसिकावनमालिकयान्वितम्।
कलितकौस्तुभकण्ठदरोपमं
तमवलोकितुमुत्सहते मनः।।५३।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— उरसि हाराणां विहारेण मनोहरम्। तुलसिकायाः वनमालिकया अन्वितम्। कलितः कौस्तुभः यस्मिन् तथाभूते कण्ठे दरोपमम्। अथवा- कलितः कौस्तुभः येन सः कलित-कौस्तुभः, कण्ठेन दरस्य उपमा यस्य सः कण्ठदरोपमः। कलित-कौस्तुभश्च कण्ठदरोपमश्च तथाभूतम् तम् अवलोकितुं मे मनः उत्सहते।

भाषार्थ— वक्षःस्थल में हारों के प्रकम्पन से मनोहर, तुलसी, पारिजात, कमल इत्यादि की वनमाला से युक्त, शंख सदृश कण्ठ में कौस्तुभ मणि को धारण करने वाले, अथवा- कौस्तुभ मणि वाले तथा शंख तुल्य कण्ठ वाले जगंन्नायक को देखने के लिये मेरा मन उत्कण्ठित होता है।।५३।।

विवृत्तिः— उरसीति- उरसि वक्षःस्थले हारविहारमनोहरं - हाराणां मुक्तामालादीनां विहारः - कम्पः, तेन मनोहरं पश्यतां मन आकर्षकम्। उरसिहारविहारेत्यनेनोरःकम्पप्रयोज्यहारकं यो गम्यते तेन चोरः कम्पप्रयोजनकस्सर्वदा भगवतो भक्तरक्षणत्वातिशयो ध्वन्यते। तुलसिकावनमालिकया - तुलस्येव तुलसिका तस्या

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

वनमालया, उपलक्षणमेतत्। तुलसीकुन्दमन्दारपारिजातसरोरुहैः आपादलम्बिनी माला वनमाला प्रकीर्तिते त्युक्तरीत्या तुलस्यादिरचितया आपादलम्बिन्या मालया अन्वितं सहितं, कलितकौस्तुभकण्ठदरोपमं - कलितो धृतः कौस्तुभो यस्मिन् तथाभूते कण्ठे कण्ठप्रदेशे दरोपमं-शंखतुल्यम् = शंखसदृशकण्ठधृतकौस्तुभमित्यर्थः। कलितकौस्तुभश्चासौ कण्ठदरोपमश्च तमिति कर्मधारयो वा। कण्ठेन दरोपमः कण्ठदरोपमः, शंखतुल्यकण्ठ इत्यर्थः। एवम्भूतं जगन्नायकं मनोऽवलोकितुमुत्सहत इत्यर्थः।

कनकसूत्रनिबद्धकटिस्थलं
विमलपीतपटेन विराजितम्।
विरचितं भुजबद्धशुभांगदम्
तमवलोकितुमुत्सहते मनः।।५४।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— कनकसूत्रेण निबद्धं कटिस्थलं यस्य तम्। विमलेन पीतेन पटेन विराजितम्। भुजयोः बद्धे शुभे अंगदे यस्य तम् अवलोकितुं मे मनः उत्सहते।

भाषार्थ— सुवर्णमय सूत्र से बंधे हुए कटि प्रदेश वाले, पवित्र पीत पट वाले, भुजाओं में बंधे हुए शुभ कंगन वाले को देखने के लिये मेरा मन उत्कण्ठित होता है।।५४।।

विवृत्तिः— कनकसूत्रेति- कनकसूत्रनिबद्धकटिस्थलम् कनकसूत्रेण सुवर्णमयसूत्रेण निबद्धं कटिस्थलं यस्य तं, विमलपीतपटेन निर्मलपीताम्बरेण विराजितं- विशेषेण शोभितं, भुजबद्धशुभांगदं - भुजयोर्बाह्वोः बद्धे शुभे अंगदे यस्य तं विलसितं विशेषेण स्वत एव भासमानम्। अनेन लौकिकपुरुषाणामिव भूषणाधीनैव शोभा

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

न स्वत इति शंका व्यावर्त्यते। एवम्भूतं जगन्नायकं मे मनोऽवलोकितुमुत्सहत इत्यर्थः।।५४।।

कटकशोभितपाणितटं शुभं
दरगदासिसुचक्रशरासनैः ।
अतिविराजितमूर्तिमनुत्तमं
तमवलोकितुमुत्सहते मनः।।५५।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— कटकैः शाभिताः पाणितटाः यस्य तथाभूतं शुभम्। दरेण, गदया, असिना, सुचक्रेण, शरासनैः अतिशयेन विराजिता मूर्तिः यस्य तथाभूतं तम् अवलोकितुं मे मनः उत्सहते।

भाषार्थ— कटक से शोभित भुजा के समीपवर्ती भाग वाले, सुन्दर शंख, गदा, असि, सुन्दर चक्र तथा धनुष से अत्यन्त प्रकाशमान मूर्ति वाले उस जगन्नायक को देखने के लिये मेरा मन उत्कण्ठित होता है।।५५।।

विवृत्तिः— कटकशोभितेति— कटकशोभितपाणितटं-कटकैर्वलयैः शोभिताः पाणिटाः हस्तसमीपदेशा यस्य तं शुभं स्वत एव कल्याणरूपं, दरगदासिसुचक्रशरासनैः = शङ्खगदाखड्गसमीचीनचक्रधनुर्भिः पाञ्चजन्य-कौमोदकी-नन्दक-सुदर्शन-शाङ्र्ग-रूपपंचायुध्या दुष्टनिग्रहपूर्वकभक्तरक्षण-व्यंजिकयेत्यर्थः। अतिविराजितमूर्तिम् अतिशयेन विराजिता प्रकाशमाना मूर्तिः दिव्यमंगलविग्रहो यस्य तम्, अनुत्तमं न विद्यते उत्तमो यस्मात्तं जगन्नायकं मे मनोऽवलोकितुमुत्सहत इत्यर्थः।

कुटिलकुन्तलमण्डलमञ्जुलं
भृकुटिभावितकर्णमहाशयम्,

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

हृदि सुपाण्डुरलक्षणलक्षितं

तमवलोकितुमुत्सहते मनः।।५६।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— कुटिलानां कुन्तलानां मण्डलेन मंजुलम्। भ्रूकुट्योर्भावः संजातः अनयोः इति भृकुटिभावितौ तौ कर्णौ यस्य तं भृकुटिभावितकर्णं च महाशयं च इति तथाभूतम्। हृदि सुन्दरं पाण्डुरलक्षणं तेन लक्षितं, तम् अवलोकितुं मे मनः उत्सहते।

भाषार्थ— घुंघराले बालों के समूह से सुन्दर, कानों तक भृकुटि वाले महाशय, हृदय में सुन्दर श्वेत चिहन से चिह्नित को देखने के लिये मेरा मन उत्कंण्ठित होता है।।५६।।

विवृत्तिः— कुटिलकुन्तलेति— कुटितलकुन्तलमण्डलमञ्जुलं = कुटिलानां वक्राणां कुन्तलानां-चिकुराणां मण्डलेन समूहेन मंजुलं कमनीयं, भृकुटिभावितकर्णमहाशयम् भृकुट्योर्भावः प्राप्तिः प्राप्त्यर्थोऽत्र भवतिः। प्राप्तिश्च व्याप्तिः। भृकुटिकर्तृका व्याप्तिरित्यर्थः। सोऽनयोः संजातो भृकुटिभावितौ। तारकादित्वादितच्। तौ कर्णौ यस्य स कर्णान्त-व्यापिभृकुटिरित्यर्थः। महान् गम्भीर आशयो यस्य स महाशयः। स चासौ हृदिं वक्षसि वक्षोदक्षिणपार्श्व इत्यर्थः। सुपाण्डुरलक्षणलक्षितं सुन्दरं पाण्डुरलक्षणं श्वेतवर्णचिह्नं पाण्डुरेति-कृष्णरक्तयोरप्युपलक्षणं, विचित्ररोमात्मकं श्रीवत्सचिह्नमित्यर्थः। तथा च स्मर्यते-*प्रदक्षिणावर्तविचित्ररोम- श्रीवत्ससद्बिम्बविभूषितान्तं वक्षो विचिन्त्यमिति* तेन लक्षितं चिह्नितं परिदृश्यमानं वा तं जगन्नायकं मनोऽवलोकितुमुत्सहते।

भवविलासनिरासविधायकं

मुनिगणामलमानसमानसम्।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

लसितनूपुरयुग्मपदाम्बुजं
तमवलोकितुमुत्सहते मनः।।५७।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— भवस्य विलासस्य निरासस्य विधायकम्। मुनीनां गणस्य यत् अमलं मानसं तस्य मानसम्। लसितं नूपुरयोः युग्म ययोः तथाभूते पदाम्बुजे यस्य तथाभूतं तम् अवलोकितं मे मन उत्सहते।

भाषार्थ— संसार के भोग विलास का विनाश करने वाले, (अर्थात् संसार से मुक्ति प्रदान करने वाले), मुनियों के समूह के पवित्र अन्तःकरण के लिये मानस सरोवर के समान, प्रकाशमान नूपुर-युगलों वाले चरणकमल वाले, उनको देखने के लिये मेरा मन उत्कण्ठित होता है।।५७।।

विवृत्तिः— भवविलासेति - भवविलासनिरास-विधायकं भवस्य संसारस्य विलासो विलसनं प्रकाशोऽनुभव इत्यर्थः। तस्य निरासो विनाशः तस्य विधायकं कर्तारं संसारमोचकमित्यर्थः। अतएव मुनिगणामलमानसमानसं मुनयो मननशीला ऋषयः तेषां गणः समूहः तस्य यदमलं मानसं निर्मलत्वेन हेयोपादेयविभागकुशलं नीरक्षीरविभागकुशलहंसतुल्यमतः तस्य मानसं हंसानां मानससर इव विहरणस्थानभूतं मुनीनां विशुद्धमनोग्राह्यमित्यर्थः। तथा च श्रुतिः - '*मनसा तु विशुद्धेने*'ति। यद्वा मुनिगणामलमानसमेव मानसं मानससरो यस्य तं मानससरसि हंसमिव निर्मले मुनिमनसि विहरणशीलमित्यर्थः। लसितनूपुरयुग्मपदाम्बुजम् लसितं प्रकाशमानं नूपुरयोः मंजीरयोर्युग्मं ययोस्ते पदाम्बुजे चरणारविन्दे यस्य तथोक्तं जगन्नायकं मनोऽवलोकितुमुत्सहत इत्यर्थः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

चन्द्रांशुगौरेण सुनीलवाससा
मदाऽऽविघूर्णारुणदिव्यचक्षुषा,
रामेण युक्तं कृतदासमुक्तं
श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामि।।५८।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— चन्द्रस्य अंशुवत् गौरेण, सुन्दरं नीलं वासः यस्य तेन तथाभूतेन, मदेन आविघूर्णे अरुणे दिव्ये चक्षुषी यस्य तथाभूतेन रामेण युक्तं, कृतं दासानां मुक्तं येन तथाभूतं श्रीमन्तं जगन्नाथम् अहं नमामि।

भाषार्थ— चन्द्रमा की किरणों के समान गौर, सुन्दर नील वस्त्रों वाले, मद से चञ्चल, रक्त दिव्य आँखों वाले श्री बलराम से युक्त, दासों की मुक्ति करने वाले श्रीजगन्नाथ को मै नमस्कार करता हूँ।।५८।।

विवृत्तिः— चन्द्रांशुगौरेणेति— चन्द्रांशुगौरेण चन्द्रांशुवत्-चन्द्रकिरणवत् गौरेण श्वेतेन, सुनीलवाससा-सुन्दरं नीलं वासो वस्त्रं यस्य तेन मदाऽऽविघूर्णारुणदिव्यचक्षुषा मदेन आ समन्तात् विघूर्णे भ्रमन्ती अरुणे रक्ते दिव्ये चक्षुषी यस्य तेन रामेण बलरामेण युक्तं दक्षिणपार्श्वे तत्सहितं कृतदासमुक्तं कृतं दासानां शरणागतानां मुक्तं - भावे निष्ठा। मुक्तिर्येन तं श्रीमज्जगन्नाथं श्रीमन्तम् अनपायिन्या पुरुषकारभूतया लक्ष्म्या सहितं जगन्नाग्रकम् अहं नमामि नमस्करोमि, शरणमवगच्छामीत्यर्थः। नमस्कारो हि शरणागतिः। '*गच्छध्वमेनं शरणं शरण्यं पुरुषर्षभ*' इति मार्कण्डेयोपदिष्ट-शरणागत्यनुष्ठानपरे '*द्रौपद्या सहिताः सर्वे नमश्चक्रुर्जनार्दनं*' मित्यत्र शरणागतिशब्दस्थाने नमः शब्दप्रयोगात् नमस्कारात्मकं यस्मै विधायात्मनिवेदनमित्यहिर्बुध्न्योक्तेश्चेत्यवसेयम्। इन्द्रवंशावंश-

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

स्थेन्द्रवज्रामिश्रितोपजातिश्छन्दः। अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः। इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु स्मरन्ति जातिष्विदमेव नामेति तल्लक्षणात्।

जगज्जनन्या करुणाग्रगण्यया
सुभद्रया शोभितदक्षभागम्।
प्रसन्नपालं पतितार्तिहारिणं
श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामि।।५९।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— जगतः जनन्या, करुणा आसाम् अस्ति इति करुणाः, तासु अग्रे गण्यया सुभद्रया शोभितः दक्षभागः यस्य तं प्रसन्नान् पालयति तं, पतितानाम् आर्तिं हरति तथाभूतं तं श्रीमन्तं जगन्नाथम् अहं नमामि।

भाषार्थ— जगत् की माता, करुणा वाली लोगों में अग्रगण्य सुभद्रा से शोभित दाहिने भाग वाले, प्रसन्न या शरणागतों की रक्षा करने वाले, पतित या पापी लोगों की आर्ति या पीडा का हरण करने वाले श्री जगन्नाथ को मै नमस्कार करता हूँ।।५९।।

विवृत्तिः— जगज्जनन्येति— जगज्जनन्या जगन्मात्रा जगन्मातुर्लक्ष्म्या अवतारभूतयेत्यर्थः। तथा च श्रीमज्जगन्नाथमाहात्म्ये सुभद्राया लक्ष्म्यवतारत्वमुच्यते। सुभद्रा चानुवदना वराज्वाभयधारिणी लक्ष्मी प्रादुर्बभूवेयं सर्वचैतन्यूपिणी। भगिनीबलदेवस्येत्येषा पौराणिकी कथा, पुंरूपे स्त्रीस्वरूपेण लक्ष्मीः सर्वत्र तिष्ठति, तस्य शक्तिस्वरूपेयं भगिनिश्रीः प्रकीर्तिता, तयोर्मध्ये स्थिता लक्ष्मीः सुभद्राभद्ररूपिणीत्यादि। करुणाग्रगण्यया-करुणा आसामस्तीति करुणाः करुणावत्यः। अर्श आद्यच्। तासु अग्रगण्यया प्रथमगणनीयया श्रेष्ठयेत्यर्थः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुभद्रया सुष्ठु भद्राणि भवन्ति यया जनानामिति योगेन सुभद्रया शोभितदक्षभागं शोभितः प्रकाशितो दक्षभागो दक्षिणपार्श्वं यस्य तं प्रसन्नपालं प्रसन्नान् शरणागतान् पालयति रक्षतीति तं पतितार्तिहारिणं पतितानां महापातकिनामप्यार्तिं पीडां हरतीति तथाभूतं श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामीत्यर्थः। वंशस्थोपेन्द्रवज्रामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

दयाविधानेन सुदासकामदं
महाप्रसादेन भवापहारिणम्।
विमुक्तिदं नीलगिरौ निवासिनं
श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामि।।६०।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— दयायाः विधानेन सुष्ठु दासानां कामान् ददाति तं, महता प्रसादेन भवात् अपहारिणं, विमुक्तिं ददाति तं, नीलगिरौ निवासिनं श्रीमन्तं जगन्नाथम् अहं नमामि।

भाषार्थ— कृपाविधान के द्वारा, दासों की कामनाओं को भली प्रकार पूर्ण करने वाले, महान् प्रसाद से संसार के जंजाल से अलग करने वाले, इस प्रकार पूर्ण मुक्ति प्रदान करने वाले, नीलगिरि में निवास करने वाले श्री जगन्नाथ को मै नमस्कार करता हूँ।।६०।।

विवृत्तिः— दयाविधानेनेति— दयाविधानेन = कृपाकरणेन, सुदासकामदं सुष्ठु दासानाम् ऐकान्तिकशेषत्वज्ञानरसिकानां कामान् ददातीति तथोक्तम्। '*शरीरारोग्यमर्थांश्च भोगाँश्चैवानुषङ्गिकान्। ददाति ध्यायिनां नित्यमपवर्गविदो हरि*' रित्युक्तरीत्या कृपापरिवाहेण दासानां शरीरारोग्यादिप्रदमित्यर्थः। महाप्रसादेन महता अपरिच्छिन्नप्रभावेण प्रसादेन स्वनिवेदितान्नेन भवापहारिणं = संसृतिनिवारकं केवलानामपि संसृत्य भाषातद्व्यावृत्त्यर्थमाह- विमुक्तिदमिति -विशिष्टा मुक्तिर्विमुक्तिः देशविशेषविशिष्टभगवत्

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

प्राप्तिपूर्वकतदनुभवजनितानवधिकाति-शयप्रीतिकारित-सकलविधकैंकर्यरूपतां ददातीति तथोक्तम्, अतएव नीलगिरौ निवासिनम् अन्यथा लीलाविभूतिजनानामाश्रयणसम्भवादिति भावः। एवम्भूतं श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामीत्यर्थः। वंशस्थेन्द्रवज्रामि-श्रितोपजातिश्छन्दः।

पापप्रणाशाय जगज्जनानां
संराजते योऽब्धितटे दयालुः।
तमुद्धरन्तं पतितानघौघाच्
छ्रीमज्जगन्नाथमहं नमामि।।६१।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यः दयालुः जगतः जनानां पापानां प्रणाशाय अब्धेः तटे संराजते तं पतितानाम् अघानाम् ओघात् उद्धरन्तं श्रीमन्तं जगन्नाथम् अहं नमामि।

भाषार्थ— जो दयालु जगत् के मनुष्यों के पापों के विनाश के लिये समुद्र के तट में निवास करते हैं। उन पतितों के पापों के समूह से उद्धार करने वाले श्रीमान् जगन्नाथ को मै नमस्कार करता हूँ।।६१।।

विवृत्तिः— पापप्रणाशायेति— दयालुर्यो भगवान् जगज्जनानां संसारचक्रे परिभ्रमतां जनानां पापप्रणाशाय पापानां प्रणाशाय, प्रकर्षेण नाशाय पापानि समूलं नाशयितुमित्यर्थः। अब्धितटे समुद्रतीरे संराजते संसाराब्धितारकत्वं सूच्यते। पतितान् महापातकिनोऽपि अघौघात् अघानां पापानाम् ओघः समूह एव ओघः प्रवाहः श्लिष्टरूपकं, तस्मात् उद्धरन्तं पतितानां पातित्यहेतुभूतमहापातकनिवारकं तं श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामीत्यर्थः। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

रत्नासनस्थं प्रणवस्वरूपं
सतां गतिं दीनदयानिधानं।
प्रदर्शयन्तं स्ववपुर्जनेभ्यः
श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामि।।६२।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— रत्नस्य आसने तिष्ठति तं, प्रणवः स्वरूपः यस्य तं , सतां गतिं, दीनेषु दयायाः निधानं, जनेभ्यः स्वं वपुः प्रदर्शयन्तं श्रीमन्तं जगन्नाथम् अहं नमामि।

भाषार्थ— रत्नों से जड़े हुए आसन पर विराजने वाले, जिसका प्रणव बोधक है ऐसे, सत्पुरुषों के उपाय, दीनों के प्रति दया के निधि, लोगों को अपना शरीर प्रदर्शित करने वाले श्री जगन्नाथ को मै नमस्कार करता हूँ।।६२।।

विवृत्तिः— रत्नासनस्थमिति— रत्नासनस्थं रत्नखचित-सिंहासनस्थं प्रणवस्वरूपं स्वं रूपयति बोधयतीति स्वरूपः प्रणवः स्वरूपः बोधको यस्य तं प्रणवप्रतिपाद्यसर्वशेषित्वादिविशिष्टमित्यर्थः। सताम् अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तमेनं ततो विदुरित्युक्तलक्षणानां सत्पुरुषाणां गतिमुपायमुपेयं चेत्यर्थः। दीनदयानिधानम् - दीनाः-सांसारिकतापत्रयाभितप्ताः उपायान्तरशून्याः निष्किंचनाः तेषु या दया तद्विषयिणी दुःखनिराचिकीर्षा तस्या निधानं निधिमित्यर्थः। अतएव समाश्रयणीयत्वाय स्ववपुः स्वीयं दिव्यमंगलविग्रहं जनेभ्यः = लीलाविभूतिस्थेभ्यः प्रदर्शयन्तं प्रकर्षेण परत्वसूचकेनेतरविलक्षणाकारेण दर्शयन्तं श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामीत्यर्थः। यद्वा रत्नासनस्थमित्यादीनि वपुषो विशेषणानि। तदा तु प्रणवस्वरूपमित्यस्य प्रणवस्येव स्वरूपं यस्येत्यर्थः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

प्रणववाक्यानालम्बनमितिं यावत्। दयाया आत्मधर्मत्वेऽपि विंग्रहावच्छेदेनैव तदभिव्यक्तेर्दीनदयाविधानमित्युक्तिः। अन्यत् सर्वं पूर्ववत्। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

या ज्ञानयोगेन विरागभक्त्या
गतिर्भवत्यब्दशतैर्मुनीनाम्।
महाप्रसादेन तु तद्गतिप्रदं
श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामि।।६३।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— ज्ञानेन योगेन च विरागसहितया भक्त्या च अब्दानां शतैः मुनीनां या गतिः भवति, महता प्रसादेन तु तं गतिं प्रददाति तं श्रीमन्तं जगन्नाथम् अहं नमामि।

भाषार्थ— ज्ञान तथा योग के द्वारा, वैराग्यसहित भक्ति के द्वारा सैकड़ों वर्षों में मुनियों को जो गति प्राप्त होती है, परम कृपा से उस गति को प्रदान करने वाले श्री जगन्नाथ को मै नमस्कार करता हूँ।।६३।।

विवृत्तिः— या ज्ञानयोगेनेति— ज्ञानयोगेन-भक्त्यंगेन ज्ञानयोगेन ज्ञानेन योगेन अनभिसंहितफलकर्मानुष्ठानरूपकर्मयोगेनेति वा अर्थः। तदा तु समाहारद्वन्द्वः। विरागभक्त्या-विरागो वैतृष्ण्यं तत्सहितया भक्त्या तैलधारावदविच्छिन्नस्मृतिसन्तान- रूपध्यानेन मध्यमपदलोपी समासः। अब्दशतैः अनन्तसंवत्सरैः। शतं सहस्रमयुतं सर्वमानं वाचकमिति नैघण्टुकाः। मुनीनां-मननशीलानां या गतिर्मोक्षो भवति, महाप्रसादेन तु, तुरेवार्थे। स्वनिवेदितमहाप्रसादेन सुलभोपायेनैव तद्गतिप्रदं मोक्षप्रदं श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामीत्यर्थः। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रावंश-स्थमिश्रितोपजातिश्छन्दः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

ये पापिनस्त्यक्तसमस्तसत्क्रिया
लोके व्यवाये विषयैर्विलिप्ताः।
महाप्रसादेन पुनाति नान्यः
श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामि।।६४।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— लोके पापिनः त्यक्ताः समस्ताः सत्क्रियाः यैः तथाभूताः, व्यवाये विषयैः विलिप्ताः (तान्) महता प्रसादेन अन्यः न पुनाति, (तं) श्रीमन्तं जगन्नाथम् अहं नमामि।

भाषार्थ— विश्व में (जो) पापी, सम्पूर्ण अच्छे कार्यों को छोड़ देने वाले, भोग विषयों में लगे हुए लोग हैं (उनको) परम कृपा से अन्य कोई पवित्र नहीं करता है। (उन) श्री जगन्नाथ को मै नमस्कार करता हूँ।।६४।।

विवृत्तिः— ये पापिन इति- लोके इहलीलाविर्भूताः पापिनः पापप्रचुरा अतएव त्यक्तसमस्तसत्क्रियाः-त्यक्ताः अननुष्ठिताः समस्ता सत्क्रिया वेदोक्तभगवद् भजनादिकर्माणि यैस्तथाभूताः व्यवाये स्त्रीभोगविषये निमित्ते विषयैः स्रक्चन्दनादितुच्छविषयैः विलिप्ताः विशेषेण लिप्ताः, तदेकपरा इत्यर्थः। एवंभूता ये जनाः तान् महाप्रसादेन यः पुनाति - पवित्रयति निष्पापान् करोति, तं श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामीत्यर्थः। इन्द्रवज्रोपेन्द्र-वज्रामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

अस्मादृशां पापविनिष्ठितानां
नान्योऽस्त्युपायस्तरणे भवाब्धेः।
महाप्रसादं ददतं तदर्थं
श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामि।।६५।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— पापेषु विनिष्ठितानाम् अस्मादृशां भवाब्धेः तरणे अन्यः उपायः न अस्ति। तदर्थं महान्तं प्रसादं ददतं श्रीमन्तं जगन्नाथम् अहं नमामि।

भाषार्थ— पापों में ही निष्ठा रखने वाले हम लोगों के लिये समुद्र रूपी संसार से तर जाने का अन्य कोई उपाय नहीं है। इसके लिये महान् प्रसाद देने वाले श्री जगन्नाथ को मै नमस्कार करता हूँ।।६५।।

विवृत्तिः— अस्मादृशामिति - पापनिविष्ठितानां पापेषु विनिष्ठितानां विशेषेण निष्ठावतां पापैकरतानामित्यर्थः। एवम्भूतानामस्मादृशाम् अस्मत् तुल्यानां जनानां भवाब्धेः संसृतिसागरस्य तरणे अन्यो ज्ञानभक्त्यादिरूपोपायो नास्ति। पापमलिनमनस्कत्वेन ज्ञानभक्त्यादौ प्रवृत्तेरेवासम्भवादिति भावः। तदर्थम् अस्मादृशां पापिनामपि भवाब्धितरणार्थं महाप्रसादं ददतं श्रीमज्जगन्नाथमहं नमामीत्यर्थः। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

यथाम्बरं वै गतिरस्ति पक्षिणां
यथा पशूनां पृथिवी गतिश्च,
अस्मादृशां पापनिविष्टचेतसां
गतिस्त्वमेवासि तथा न चान्यः।।६६।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यथा पक्षिणाम् अम्बरं वै गतिः। यथा च पशूनां पृथिवी गतिः। तथा पापे निविष्टं चेतो येषां तताभूतानाम् अस्मादृशां त्वम् एव गतिः असि। अन्यः न च।

भाषार्थ— जैसे पक्षियों का आकाश आश्रय है तथा जैसे पशुओं का पृथिवी आश्रय है। उसी प्रकार पाप में लगे हुए मन वाले हम जैसे लोगों का तुम ही गति हो, अन्य कोई नहीं।।६६।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विवृत्तिः— यथाम्बरमिति-पक्षिणां- खेचराणाम् अम्बरं गगनं यथा गतिराश्रयः। अस्ति भवति वैशब्दो निश्चये प्रसिद्धौ वा। यथा च पशूनाम् उपलक्षणमेतत्। मनुष्यपश्वादीनां पृथिवी गतिराश्रयः। तथा पापनिविष्टचेतसां - पापेषु निविष्टं चेतो येषां तथाभूतानाम् अस्मादृशाम्-अस्मत्तुल्यजनानां त्वमेव गतिराश्रयोऽसि। न चान्यस्त्वद्व्यतिरिक्तो गतिरित्यर्थः। वंशस्थोपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

अन्यः समर्थो भुवि कोऽपि नास्ति
यदुद्धरेन्मां कृपयाऽतिपापम्।
आधारभूतं तव पादपद्मं
तस्माज्जगत्पावन! रक्ष लज्जाम्।।६७।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— अतिपापं मां कृपया यत् उद्धरेत्, (एवम्भूतः) अन्यः समर्थः कोऽपि भुवि नास्ति। तस्मात् तव पादपद्मम् आधारभूतम्। (तस्मात्) जगतः पावन! लज्जां रक्ष।

भाषार्थ— मुझ अत्यन्त पापी का जो अपनी कृपा से उद्धार करे (ऐसा) अन्य कोई भी इस धरती में समर्थ नहीं है। इसीलिये तुम्हारा चरणकमल आधारभूत है। (इसलिये) हे जगत् को पवित्र करने वाले! मेरी लज्जा की रक्षा करो।।६७।।

विवृत्तिः— अन्यः समर्थ इति- अतिपापम्-अतिशयितपापवन्तं मां कृपया यदुद्धरेत्-पापान्मोचयेत् समर्थ एवम्भूतः पापमोचनसमर्थः। अन्यस्त्वद्व्यतिरिक्तः कोऽपि भुवि नास्ति। तस्मादिति-पूर्वोत्तरयोरन्वेति। तस्मात् त्वद्व्यतिरिक्तस्य कस्यापि मदुद्धारकस्याभावात्। तव पादपद्ममिति सावधारणं-

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

त्वच्चरणारविन्दमेव आधारभूतं ममालम्बनं तस्मात् त्वच्चरणारविन्दस्यैव मदाधारभूतत्वात्, हे जगत्पावन! लज्जां मदीयां रक्षेति लोकोक्तिः। त्वमेव मां रक्षेत्यर्थः। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

यो मां तवास्मीति जनः प्रयाचते
तस्मै ददामीत्यभयं व्रतं मे।,
आधार एषोऽद्य ममापि नाथ
व्रतं स्वकीयं न विहातुमर्हसि।।६८।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यः जनः मां 'तव अस्मि' इति प्रयाचते। तस्मै अभयं ददामि, इति मे व्रतम्। नाथ! एषः अद्य मम अपि आधारः। स्वकीयं व्रतं विहातुं न अर्हसि।

भाषार्थ— जो मनुष्य मुझसे 'तुम्हांरा हूँ' ऐसा कह कर मांगता है, उसे मै अभय देता हूँ, यह मेरा व्रत है। नाथ! यही (व्रत) आज मेरा भी आधार है। आप अपने व्रत को नहीं छोड़ सकते।।६८।।

विवृत्तिः— यो मामिति-तवास्मि त्वत्सम्बन्धी त्वच्छरणागतोऽहमस्मीति योजना। प्रयाचते-याचनापूर्वकं शरणं प्रपद्यते तस्मै जनाय अभयं ददामीति मे व्रतं संकल्पः। सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येततद् व्रतं ममेति स्वेनैवोक्तम्। हे नाथ एष त्वदीयोऽयं संकल्पः अद्य शरणगतत्वावस्थायां ममाप्याधारः आलम्बनम्। न हि स संकल्पो न मद्विषयक इति भावः। स्वकीयं-स्वेनैव कृतं व्रतं संकल्पं विहातुं मदर्थमित्युक्तं नार्हसि शरणागतं मां रक्षित्वा स्वव्रतं रक्षेत्यर्थः। इन्द्रवंशेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

त्यक्त्वा स्वधर्मानखिलान् जनो यदा
त्वनन्यधीर्मा शरणं समीपात्।
अहं तदाघानि विमोचयामि
व्रतं त्वदीयं शरणं ममेदम्।।६९।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— अखिलान् स्वधर्मान् त्यक्त्वा, न विद्यते अन्यस्मिन् धीः यस्य तथाभूतः जनः यदा मा शरणं समीपात् (सम्यक् प्रपद्यते)। तदा अहम् अघानि विमोचयामि। इदं त्वदीयं व्रतं मम शरणम्।

भाषार्थ— सम्पूर्ण अपने धर्मों को छोड़कर केवल मुझमें बुद्धि रखने वाला मनुष्य जब मेरी शरण को समीप से प्राप्त करता है। तब मै सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर देता हूँ। आपका यह व्रत ही मेरी शरण है।।६९।।

विवृत्तिः— त्यक्त्वेति-अखिलान् स्वधर्मान् कर्मयोगज्ञानभक्तियोगान् त्यक्त्वा उपायत्वेन परित्यज्य अनन्यधीः मदेकशेषत्वज्ञानवान् जनः। यद्वा मां हि—हिः प्रसिद्धौ। दयावात्सल्यसार्वज्ञ्यसर्वशक्तत्वादिगुणयुक्तत्वेन प्रसिद्धं मां शरणमुपायं समीपात् सम्यक् प्रपद्यते। समाविश्वासाद् व्यंजकत्वमवगम्यते। तदा तदैव अहं पापविमोचनोपयुक्तज्ञानशक्त्यादिपूर्णोऽहम् अघानि शरणागतस्य सर्वाणि पापानि विमोचयामि। विशेषेण पुनः प्रसंगरहितं मोचयामि। इदम् एवंरूपं त्वदीयं व्रतं संकल्पः मम सर्वधर्मान् परित्यज्य त्वां शरणं प्रपन्नस्य मम शरणं रक्षकमित्यर्थः। *'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो*

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

मोक्षयिष्यामि मा शुचः' इति स्वेनैवोक्तम्। इन्द्रवंशोपेन्द्रवज्रामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

श्रुत्वा पुराणानि वदामि धर्मान्
करोमि किंचिन्नहि तद्विधानम्।
लज्जाविहीनेऽपि पुरःस्थिते मयि
प्रसीद नीलाचलनाथ दीने।।७०।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— नीलाचलनाथ! पुराणानि श्रुत्वा धर्मान् वदामि। किंचित् तस्य विधानं नहि करोमि। अपि लज्जया विहीने पुरः स्थिते दीने मयि प्रसीद।

भाषार्थ— हे नीलाचलनाथ! पुराणों को सुनकर धर्म का उपदेश करता हूँ। कुछ भी उस धर्म का अनुष्ठान नहीं करता हूँ। तब भी लज्जा से हीन होकर आपके आगे खड़े हुए मुझ दीन पर प्रसन्न होइये।।७०।।

विवृत्तिः— श्रुत्वेति- हे नीलाचलनाथ! पुराणानि श्रुत्वा धर्मान् वदामि — अन्येभ्य उपदिशामि। किंचित् किंचिदपि तद्विधानं तद्धर्मानुष्ठानं न करोमि। हिः प्रसिद्धौ। अतः कुलिंगशकुनितुल्योऽहमिति भावः। तथा च भारते- '*न गाथा गाथिनं शास्ति, बहु चेदपि गायति, प्रकृतिं यान्ति भूतानि कुलिंगशकुनिर्यथे*' ति। अपि-अथापि लज्जाविहीने पुरःस्थिते लज्जां त्यक्त्वा त्वदग्रे स्थिते परिपाकदशायां दीने मयि प्रसीद-प्रसन्नो भव। प्रसादस्य रक्षणैकान्तत्वाद्रक्षेत्यर्थः। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रेन्द्रवंशामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

---

१. भगवद्गीता १८.६६

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

प्रारब्धदोषाद्यदभूदभूत्तच्
छोचामि किंचिन्न हि तस्य दुःखम्।
शोचामि यत् त्वच्छरणागतं मां
प्रबाधते पापपराभवोऽयम्।।७१।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— प्रारब्धस्य दोषात् यद् दुःखम् अभूत् तद् अभूत्। तस्य किंचित् नहि शोचामि। अयं पापस्य पराभवः तव शरणम् आगतं मां यत् प्रबाधते (तत्) शोचामि।

भाषार्थ— फलोन्मुख पाप के दोष से जो दुख हुआ, वह हो गया। उसके लिये मै जरा भी शोक नहीं करता हूँ। यह पाप (कृत) तिरस्कार तुम्हारी शरण में आए मुझको बाधित करता है, इसका मै शोक करता हूँ।।७१।।

विवृत्तिः— प्रारब्धदोषादिति-प्रारब्धदोषात्-फलप्रदानोन्मुखात् पापात् यद्दुःखमभूत् तदभूदेव तस्य तदर्थं तादर्थ्यस्य सम्बन्धत्वविवक्षया षष्ठी। किंचित् ईषदपि न हि शोचामीत्यर्थः। तस्यावर्जनीयत्वादिति भावः। तर्हि किमर्थं शोचसीत्यत आह शोचामीति। अयम् अनुभूयमानः पापपराभवः— पापकर्तृकतिरस्कारः त्वच्छरणागतं मां प्रबाधते— प्रकर्षेण दुर्निवारं बाधत इति यत्तदर्थं शोचामि— त्वच्छरणागतस्य पापैः पराभवस्त्वन्निकर्षावह इति शोचामीत्यर्थः। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

न चित्तवृत्तिस्स्थिरतां प्रयाति
न पापकर्मस्वपि मेऽस्ति तोषः।
केन प्रयत्नेन गतिं च लप्स्ये
लज्जा त्विदानीं तव पाणिपद्मे।।७२।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— चित्तस्य मे वृत्तिः स्थिरतां न प्रयाति, पापेषु कर्मसु अपि मे तोषः न अस्ति। केन प्रयत्नेन गतिं च लप्स्ये। इदानीं लज्जा तव तु पाणिपद्मे।

भाषार्थ— मेरे मन की वृत्ति स्थिरता को प्राप्त नहीं होती। पापकर्मों में भी मुझे सन्तोष नहीं है। मै किस उपाय से (सु) गति या मोक्ष को प्राप्त करुँगा। अब लज्जा तुम्हारे ही चरण कमलों के अधीन हैं।।७२।।

विवृत्तिः — न चित्तवृत्तिरिति-मे चित्तवृत्तिर्मनोव्यापारः स्थिरतां न प्रयाति-विषयेष्वेव धावतीत्यर्थः। पापकर्मसु पापहेतुषु निन्दितकर्मसु अलं बुद्धिरपि नास्तीत्यर्थः। प्रत्यहं वर्धत एवेति भावः। अतः केन प्रयत्नेन केनोपायेन गतिं च। चस्त्वर्थः। गतिं तु विलक्षणां गतिं मोक्षमित्यर्थः। लप्स्ये-प्राप्स्यामि। इदानीम् - एवंरूपानन्यगतिकत्वावस्थायां लज्जा मदीया, तुरवधारणार्थो भिन्नक्रमः। तव तु तदैव पाणिपद्मे इति लोकोक्तिः। मद्रक्षा त्वद्धीनैवेत्यर्थः। पूर्ववदुपजातिश्छन्दः।

शास्त्रेषु वेदेषु पुराणकल्पे
श्रुतो मया त्वं पतितोद्धरः सदा।
अतोऽतिपापे पतितप्रधाने
दयाविधाने त्वमसि क्षमोऽद्य।।७३।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— शास्त्रेषु वेदेषु पुराणकल्पे त्वं सदा पतितानाम् उद्धरः (इति) मया श्रुतः। अतः पतितेषु प्रधाने अतिपापे अद्य दयाया विधाने त्वं क्षमः असि।

भाषार्थ— धर्मशास्त्र, वेद तथा पुराण सदृश ग्रन्थों में 'तुम सदा पतितों का उद्धार करने वाले हो' ऐसा मैने सुना है। अतः पतितों में मुख्य अत्यन्त पापी पर दया करने में तुम ही समर्थ हो।।७३।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विवृत्तिः— शास्त्रेष्विति-शास्त्रेषु धर्मशास्त्रेषु वेदेषु पुराणकल्पे पुराणरूपे प्रबन्धे त्वं सदा पतितोद्धरः उद्धरतीत्युद्धरः - पचाद्यच्। पतितानामुद्धरः पतितोद्धर इति मया श्रुतः। अतस्तव पतितोद्धारकत्वस्य श्रुतिस्मृत्यादि प्रमाणप्रतिपन्नत्वात् अतिपापे अतिशयितपापे अत एव पतितप्रधाने पतितेषु श्रेष्ठे मयि अद्य त्वदाभिमुख्यदशायां दयाविधाने कृपाकरणे त्वं त्वमेव क्षमोऽसि = योग्योऽसि नान्य इत्यर्थः इन्द्रवज्रावंशस्थोपेन्द्रवज्रामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

गृध्रे गुहे वै नृगभूमिदेवे
गजे पिशाचेऽपि कृता तु या दया।
कारागृहे राजसु मागधस्य
कुरुष्व दीने मयि तां दयां प्रभो।।७४।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— प्रभो! गृध्रे, गुहे वै नृगे च तथाभूते भूमिदेवे गजे पिशाचे अपि, मागधस्य कारागृहे राजसु या तु दया कृता, तां दयां मयि दीने कुरुष्व।

भाषार्थ— हे प्रभो! जटायु गृध्र, निषाद गुह, नृग नामक राजा, (ग्राह से पीडित) हाथी, (घण्टकर्ण नामक) पिशाच पर, तथा मगध देश के राजा (जरासन्ध) के कारागृह या जेल में राजाओं पर जो आपने दया की, उस दया को मुझ दीन पर भी कीजिये।।७४।।

अनुशीलन— यहाँ महाभारत, पुराण आदि में प्राप्त अनेक घटनाओं की ओर संकेत किया गया है। इस ग्रन्थ के अन्य श्लोकों में तथा स्वरचित जगन्नाथ शतक में भी इनका विवरण प्राप्त है। जैसे इस श्लोक के नृग राजा तथा जरासन्ध के जेल के राजाओं का वर्णन जगन्नाथ शतक के कवित्त ९९ के इस वचन से तुलनीय है—

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

धर्मनरेश की काट्यो विपत्ति
तुम्हीं नृगभूपति हूँ को उधारे।
मागध बन्दी निवेष नरेश
सहस्रदशै युग जाई निकारे।

विवृत्तिः—गृध्र इति — हे प्रभो जगन्नाथ! गृध्रे यक्षादिविरहादत्यशक्ते जटायुषि, गुहे अतिनीचे निषादे नृगभूमिदेवे राजस्वतिदुःखाक्रान्ते नृगाख्ये राजनि, गजे ग्राहाख्यशत्रुपीडाक्रान्ते गजेन्द्रे, पिशाचे मांसादेऽत्यशुचौ घण्टकर्णे। अपिशब्दोऽनुक्त-सुग्रीवविभीषणादिसमुच्चयार्थः। मागधस्य मगधदेशाधिपस्य जरासन्धस्य, कारागृहे राजसु अनन्यशरणतया दीनेषु, कारगृहान्मोक्षेच्छुषु, तत्र निबद्धेषु राजसु या तु दया कृता। तुशब्दो दयावैलक्षण्यं द्योतयति, वैशब्दः प्रसिद्धिम्। दीने-सांसारिकतापत्रयेणातिखिन्ने मयि तां दयां कुरुष्व। दासलोभोत्कर्षादिरूपस्य दयाकारणफलस्य कर्तृगामित्वा-दात्मनेपदम्। मयि कृपां कृत्वोत्कर्षं प्राप्नुहीत्यर्थः। तेषु रक्ष्यत्वौपयिक एकैको गुणो, मयि तु रक्ष्यत्वोपयिका निरुक्तास्सर्वे गुणा, अतः कुतो मां न रक्षसीति भावः। इन्द्रवज्रावंशस्थमिश्रितोपजातिश्छन्दः।

यद्यप्यहं पापसमूहकारी
स्थातुं हि नार्होऽस्मि पुरस्तथापि।
त्वन्नाम संस्मृत्य निजं जगत्पते
मामुद्धर प्रेष्ठमकिंचनानाम्।।७५।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— जगत्पते! यद्यपि हि अहं पापानां समूहं करोति तथाभूतः (अस्मि), (अतः) पुरः स्थातुम् अर्हः न अस्मि। तथापि त्वं निजम् अकिंचनानां प्रेष्ठं नाम (इति) संस्मृत्य माम् उद्धर।

भाषार्थ— जगत् के पति! यद्यपि मै अनेक पापों को करने वाला हूं। अतः तुम्हारे आगे ठहरने के योग्य नहीं हूँ। तो भी 'तुम स्वयं अनन्य गति वालों के लिये सबसे प्रिय नाम रखते हो' इसे याद करके मेरा उद्धार करो।।७५।।

विवृत्तिः— यद्यपीति-हे जगत्पते = जगत्स्वामिन्। हिर्हेतौ। यतोऽहं पापसमूहकारी, पापसमूहकरणशीलः, अतः पुरः तवाग्रे स्थातुमपि अर्हो योग्यो नास्मि। किमुत मां रक्षेति विज्ञात इतिभावः। तथापि स्थातुं विज्ञापयितुं ममायोग्यत्वेऽपि त्वं त्वमेव निजं स्वासाधारणम् अकिंचनानाम् = अनन्यगतिकानां प्रेष्ठं - स्वरक्षणौपयिकत्वात् प्रियतमं नाम अशरण्यशरण्यानालोचितविशेषाशेषलोकशरण्येत्यादिकं गुणनामधेयं संस्मृत्य सम्यक् स्मृत्वा, अश्वकर्णादिशब्दवत् केवलरूढं मा भूत् अपित्वन्वर्थमेव भवत्विति विचार्येत्यर्थः। माम् -अनन्यगतिकं माम् उद्धर-पापसमूहाद्विमोच्य त्वत्पादं प्रापयेत्यर्थः। प्रष्ठमिति वा पाठः। तदा त्वकिंचनानां प्रष्ठम् अग्रगामिनं श्रेष्ठं मामुद्धरेत्यर्थः। प्रष्ठोऽग्रगामिनीति निपातः। इन्द्रवज्रेन्द्रवंशामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

क्व यान्यहं कन्नितरां स्मराणि
नान्योऽस्ति लोके प्रभुदीननाथः।
अतो भवन्तं जगदेकनाथम्
उपायहीनः शरणागतोऽहम्।।७६।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— अहं क्व यानि, कं नितरां स्मराणि। लोके अन्यः दीनानां नाथः प्रभुः न अस्ति। अतः भवन्तं जगतः एकं नाथम् उपायेन हीनः अहं शरणम् आगतः।

भाषार्थ— मै कहाँ जाऊँ, किसे अत्यधिक याद करूँ। इस विश्व में अन्य कोई दीनों का रक्षक प्रभु नहीं है। अतः जगत् के एकमात्र रक्षक के पास मै उपाय से हीन होकर शरण में आया हूँ।

अनुशीलन— इस श्लोक के प्रयोग से प्रकट है कि 'दीननाथ' यही शुद्ध शब्द है। हिन्दी में गलती से 'दीनानाथ' का प्रयोग चल पड़ा है, जो कि उल्टे अर्थ को प्रकट करने लगता है।।७६।।

विवृत्तिः— क्व यानीति-अहं क्व यानि = त्वदनधिष्ठिते कुत्र देशे गच्छेयं-कं त्वद्व्यतिरिक्तं नितरां स्मराणि = स्मरेयम्। अत्र हेतुमाह - नान्य इत्यादिना। जगदेकनाथं = जगतः चेतनाचेतनात्मकप्रपञ्चस्य एकनाथम् अद्वितीयस्वामिनं भवन्तं ऋते विहाय प्रभुदीननाथः प्रभुः = इष्टप्रापणानिष्टनिवारणसमर्थः दीननाथः = दीनानां सांसारिकतापत्रयेण क्लिश्यतां नाथः स्वामी रक्षक इत्यर्थः। स चासौ स च तादृशः अन्यः कोऽपि लोके नास्ति। अतः उपायहीनः त्वद्व्यतिरिक्तोपायशून्योऽहं शरणागतः त्वामेव शरणमुपायमध्यवसितवानित्यर्थः। अथवा जगदेकनाथं भवन्तमृते उपायहीनोऽहं शरणागत इत्यन्वयः। उपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

पंचालराजस्य कुमारिका या
लज्जा त्वया संस्मरणेन रक्षिता

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तथैव नीलाद्रिपतेऽनुकम्पया
लज्जां मदीयामव वासुदेव।।७७।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— वासुदेव! पंचालराजस्य या कुमारिका (तस्याः) लज्जा त्वया संस्मरणेन रक्षिता। तथैव नीलाद्रिपते अनुकम्पया मदीयां लज्जाम् अव।

भाषार्थ— हे वासुदेव! पंचाल देश के राजा (द्रुपद) की पुत्री (द्रौपदी) की लज्जा को आपने स्मरणमात्र से बचाया। इसी प्रकार हे नीलाचल के पति! दया करके मेरी भी लज्जा की रक्षा करो।।७७।।

विवृत्तिः— पंचालराजस्येति-हे वासुदेव- वसुदेवापत्यभक्त-परित्राणार्थं दुष्टनिग्रहार्थं च वसुदेवगृहे कृतावतारेत्यर्थः। यद्वा सर्वत्र वसत्यसाविति वा, सर्वमस्मिन् वसतीति वा वासुः। तथा च वैष्णवं वचः— *सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः। ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते*[1] इति। दीव्यति क्रीडति जगत्सृष्ट्यादिभिरिति देवः। यद्वा वासुशब्दार्थफलितजगच्छरीरकत्व प्रयुक्तदोषभाक्त्वव्यावृत्तये देवशब्दः। दीव्यति जगच्छरीरकत्वेऽपि तद्गतदोषभाक्त्वाभावेन द्योतत इति देवः। स चासौ स च तथाभूत हे नीलाद्रिपते एतत्पदद्वयेन आश्रितजनोपयोगिपरत्वसौलभ्यादिकं व्यज्यते। पांचालराजस्य द्रुपदस्य कुमारिकायाः पुत्र्याः अनन्यगतिकायाः द्रौपद्याः लज्जावस्त्रापहरणादिकालिकीलज्जासंस्मरणेन सम्यक्स्मरणेन प्रेमपूर्वकत्वस्मरणेन करणेन त्वया अवाप्तसमस्तकामत्वेन किंचित्कारानपेक्षिणा संसारतन्त्रवाहित्वेन रक्षापेक्षामात्रापेक्षिणा त्वया यथेति योज्यं यथा रक्षिता तथैव मदीयाम् अनन्यगतिकत्वेन तवैव

१. विष्णु पुराण १.२.१२

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

संस्मर्तुर्मम सम्बन्धिनीमपि लज्जामनुकम्पया कृपया अव रक्षेत्यर्थः। इन्द्रवज्रेन्द्रवंशावंशस्थमिश्रितोपजातिश्छन्दः।

त्वत्प्रेरितौ मत्पितरौ प्रचक्रतु-
र्मन्नाम यद् भागवतप्रसादम्।
स्वसम्प्रदाये कृतवान् यतस्त्वं
तद्ध्रीर्जगन्नाथ भवत्करां व्रजेत्।।७८।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— जगन्नाथ! त्वया प्रेरितौ मम पितरौ भगवतः प्रसादं मम नाम प्रचक्रतुः। यतः त्वं स्वस्य सम्प्रदाये कृतवान्। तत् ह्रीः भवतः करां व्रजेत्।

भाषार्थ— हे जगन्नाथ! तुमसे प्रेरित होकर मेरे माता पिता ने भगवान् के प्रसाद के रूप में मेरा यह नाम रखा है। क्योंकि तुमने मुझे अपने (वैष्णव) सम्प्रदाय में दीक्षित किया है। अतः मेरी लज्जा आपके हाथों में जाती है।।७८।।

विवृत्तिः— त्वत्प्रेरिताविति- हे जगन्नाथ! त्वत्प्रेरितौ त्वया अन्तर्यामिणा प्रेरितौ मत्पितरौ मम मातापितरौ। पिता मात्रेत्येकशेषः। भागवतप्रसादं भागवतप्रसाद इत्याकारकं मन्नाम यद् यस्माद्धेतोः प्रचक्रतुः प्रकर्षेण कृतवन्तौ। नाम्नः प्रकृष्टत्वेन तत्करणस्यापि प्रकृष्टत्वं। यतश्च हेतोस्त्वं स्वसम्प्रदाये स्वेनैव प्रवर्तिते - स्वस्यैवोपास्यत्वपरे श्रीवैष्णवसम्प्रदाये कृतवान् तन्निष्ठं मामकार्षीः, तत्तस्मात् तत् तस्माच्च हेतोः ह्रीः मदीया लज्जा भवत्करां व्रजेत्। मद्रक्षा त्वदधीनेत्यर्थः। त्वत्सम्बन्धिनाम मम कारयित्वा तदनुगुणसत्सम्प्रदायनिष्ठं च मां कृत्वा यदि मां न रक्षेः तदा

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

एतावतः त्वत्प्रयत्नस्य वैयर्थ्येन तवैव हानिर्भवेदिति भावः। इन्द्रवंशेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

हास्यन्न लोके मम किंचिदस्त्यहं
हास्यास्पदं यत्स्वयमेव जातः,
किन्तु त्वदग्रे शरणागतानां
हास्यं च लोकेषु महाननर्थः।।७९।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— मम किंचित् लोके हास्यं नास्ति। यत् अहं स्वयम् एव हास्यास्पदं जातः। किन्तु शरणम् आगतानां तव अग्रे लोकेषु च हास्यं महान् अनर्थः।

भाषार्थ— मेरा कुछ भी लोक में उपहासयोग्य नहीं रहा है। क्योंकि मै स्वयं ही परिहासयोग्य हो गया हूँ। किन्तु तुम्हारी शरण में आए हुए (मेरे जैसे लोगों) का तुम्हारे सामने लोक में हास्य हो, यह महान् अनर्थ है।।७९।।

विवृत्तिः— हास्यमिति— मम किंचिदपि लोके हास्यं नास्ति। निन्दितगुणकर्माणं मां लोकः परिहसतीति न क्षतिकरमित्यर्थः। कुत इत्यत्राह-अहमित्यादि। यद् यस्माद्धेतोः अहं स्वयमेव स्वत एव हास्यास्पदं परिहासयोग्यो जातः अभूवम्। निन्दित गुणकर्मणो मम परिहासास्पदत्वं स्वाभाविकमिति न तत्क्षतिकरमित्यर्थः। तर्हि का क्षतिरित्यत्राह—किन्त्वित्यादि। शरणागतानां त्वमेव शरणं प्राप्तानां मादृशानां त्वदग्रे च शरण्यस्य तव पुरस्तादेव लोकेषु हास्यं परिहासास्पदत्वं महाननर्थः। सर्वज्ञस्य सर्वशक्तेः शरण्यस्य तव महती क्षतिरित्यर्थः। इतः परं त्वां न कोऽपि शरणं व्रजेत। तव

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

शरणागतरक्षकत्वविरुदं च हीयेतेति भावः। इन्द्रवंशेन्द्रवज्रामिश्रितोपजातिश्छन्दः।

शोचामि नाहं नरकप्रयाणं
शोचामि नाहं पतितोऽभवं यत्।
शोचाम्यहं त्वच्छरणागतस्य मे
नेयं दशा नाथ तवानुरूपा।।८०।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— अहं नरकं (प्रति) प्रयाणं न शोचामि। अहं यत् पतितः अभवम् तत् अपि न शोचामि। तव शरणम् आगतस्य मे इयं दशा तव अनुरूपा न, नाथ! (इत्येव) अहं शोचामि।

भाषार्थ— मै नरक की ओर प्रयाण करूँगा, इसका मै शोक नहीं करता। मै जो पतित हो गया, इसका भी मै शोक नहीं करता। तुम्हारे शरण में आए हुए मेरी यह दशा तुम्हारे (शरणागत रक्षक के) अनुरूप नहीं है, यही सोचता हूँ।।८०।।

विवृत्तिः— शोचामीति— अहं नरकप्रयाणं प्रति न शोचामि, नरकं प्रयास्यामीति शोकं न करोमीत्यर्थः, तद्धेतोः सिद्धत्वादिति भावः। किं च-अहं पतितः नरकपात-हेतुभूतमहापातकवानभवमिति यत् तदपि न शोचामि। तस्य शोकापनोद्यत्वाभावादिति भावः। तर्हि किमर्थं शोचसीत्यत आह— शोचाम्यहमिति - त्वच्छरणागतस्य मे इयमनुभूयमाना दशा सांसारिकतापत्रयाभिहतिरूपावस्था तव सर्वज्ञस्य सर्वशक्तेः शरणागतरक्षकस्य तव नानुरूपा दशा इत्येवाहं शोचामीत्यर्थः। पूर्ववदुपजातिश्छन्दः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

य आद्यन्तोऽनादिः सकलगुणवृन्दैकसदनं
स्वशक्त्येदं विश्वं सृजति सुतरां पाति हरते।
जगत्क्रीडाकारी निजजनदयादाननिरतो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।८१।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यः आद्यः। अन्तः अस्ति अस्मिन् इति अन्तः। न विद्यते आदिः यस्य स अनादिः। सकलानां गुणानां वृन्दं तस्य एकं सदनम्। स्वस्य शक्त्या इदं विश्वं सृजति, सुतरां पाति, हरते। जगता क्रीडां करोति इति तथाभूतः। निजाः ये जनाः तेभ्यः दयया दाने निरतः। अथवा- निजजनानां दयया आदानं तत्र निरतः। स्वामी जगन्नाथः मे नयनपथं गच्छति इति तथाभूतः भवतु।

भाषार्थ— जो आदि में अर्थात् सृष्टि के पूर्व भी वर्तमान रहता है। जिसमें (समस्त विश्व का) अन्त होता है। जिसका कोई प्रारम्भ नहीं है। जो सम्पूर्ण गुणों के समूह का एकमात्र घर है। जो अपनी शक्ति से इस विश्व का सृजन करता है, भली प्रकार रक्षा करता है तथा हरण करता है। जो जगत् के द्वारा क्रीडा या लीला करता है। जो निज जनों के लिये दया के दान में लगा है। अथवा- निज जनों को दया से लेने या स्वीकार करने में लगा है। इस प्रकार का जगन्नाथ स्वामी मरे नयनों का गोचर बन जावे।।८१।।

विवृत्तिः— य आद्य इति - आदौ भवः आद्यः, सृष्टेः प्रागपि वर्तमान इत्यर्थः। अन्तो लयो यस्मिन्नस्तीत्यन्तः। अर्श आद्यच् प्रत्ययः। आभ्यामुपादानकारणत्वं विवक्षितं। सृजतीत्यादिनोत्तरत्र निमित्तकारणत्वस्य वक्ष्यमाणत्वात्। अतो न तेन पुनरुक्तिः। सकलगुणवृन्दैकसदनं सकला ये गुणाः ज्ञानशक्तिकारुण्यादयः

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तस्यैकसदनं मुख्याधारः। वृन्दशब्देन एकैकविधगुणस्यापि विषयभेदेन अनेकविधत्वात् समूहीकरणं विवक्षितं, सकलशब्देन सजातीयानेकत्वं विवक्षितम्, अत उभयोरर्थवत्वम्। यः एवंविधत्वेन वेदान्तप्रसिद्धो यो भवान् स्वशक्त्या- सृष्ट्याद्यौपयिक्या स्वासाधारणशक्त्या। यद्वा शक्तिशब्दः कार्योपयोग्यपृथक्सिद्धविशेषणपरः। स्वशक्त्या— कार्योपयोगिन्या स्वापृथक्सिद्धया प्रकृत्येत्यर्थः। इदं चेतनाचेतनात्मकं विश्वं कृत्स्नं जगत् सृजति = अद्वारकं सद्वारकं च निर्माति, सुतरां पाति, स्वयमेव विष्णुरूपेण मन्वादिरूपेण च सुष्ठु रक्षति, हरते = रुद्ररूपेण संहरते चेत्यर्थः। क्रियाफलस्य लीलारसस्य कर्तृगामित्वेनात्मनेपदम्। नन्ववाप्तसमस्तकामस्य भगवतो जगत्सृष्ट्यादौ कुतः प्रवृत्तिरित्याशंकापरिहारायाह - जगदिति। जगता चेतनाचेतनात्मक-प्रपञ्चेन क्रीडां लीलां करोतीति तथेत्यर्थः। जगत् सृष्ट्रयादेः लीलैव प्रयोजनं नान्यदिति भावः। आह च सूत्रकारः-*लोकवत्तु लीलाकैवल्यमि*'ति। जगत् क्रीडाकारो यः सृजतीत्यन्वयः। यच्छब्दश्रवणात् तच्छब्दोऽध्याहार्यः। निजजनदयादाननिरतः = निजजनाः = स्वदासजनाः तेभ्यो दयादानं दयया पथा तदीयाभिलषितपुरुषार्थचतुष्टयप्रदानं तस्मिन्निरतः, नितरामासक्तः। यद्वा निजजनानां दयया आदानं स्वीकारः तत्र निरतः, शरणागतजनपरिग्रहैकशील इत्यर्थः। मित्रगावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचनेति स्वेनैवोक्तम्। स्वामी = अखिलजगच्छेषी स जगन्नाथः स्वशेषभूतस्य स्वदर्शनाकांक्षिणो मम नयनपथगामी चक्षुर्गोचरो भवतु। प्रार्थनायां लोट्। तद्दर्शनौपयिकोपाय-विहीनस्य मम तद्दर्शने का शक्तिः। अतः स एव कृपया स्वात्मानं दृष्टिगोचरं

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

करोत्विति प्रार्थ्यत इति भावः। इत आरभ्य षोडशश्लोक्यां शिखरिणी छन्दः। रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणीति तल्लक्षणात्।

सदा वृन्दारण्ये वरमधुरवंशीध्वनिरतो
निकुञ्जे भृङ्गाढ्ये बहु सुरभिसंचारणपरः।
सुहृद्भिर्गोपालैः सुखितवदनैर्योऽतिशुशुभे
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।८२।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— वृन्दारण्ये भृङ्गैः आढ्ये निकुञ्जे सदा वरे मधुरे वंश्या ध्वनौ रतः, बह्व्यः सुरभयः तासां संचारणे परः। सुखितानि वदनानि येषां तैः सुहृद्भिः गोपालैः यः अतिशुशुभे। जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु।

भाषार्थ— वृन्दावन में भौंरों से परिपूर्ण कुञ्ज में सदा सुन्दर तथा मधुर वंशी की आवाज में जो लगा है तथा बहुत सी सुन्दर गायों के संचारण कराने में लगा है। जो सुखित मुख वाले मित्र ग्वालों के साथ अत्यन्त शोभित हो रहा है। इस प्रकार के जगन्नाथ स्वामी मेरे नयनों के गोचर बने।।८२।।

विवृत्तिः— सदेति-वृन्दारण्ये = वृन्दावने भृङ्गाढ्ये = मञ्जुगुञ्जद्भिर्भ्रमरैराढ्ये परिपूर्णे निकुंजे लतागृहे सदा मधुरवंशीध्वनिरतः = मधुरे श्रवणसुखावहे वंशीध्वनौ मुरलीनिनादे रतः = आसक्तः अत्यादरेण मुरलीवादनपर इत्यर्थः। बहुसुरभिसंचारणपरः = बह्व्यः सुरभयो धेनवः तासां सम्यक् चारणं गमनं भक्षणं च, चरतेरुभयार्थत्वात्, तत्र पर आसक्तः पवित्रयदुकुलतिलको भगवान् सुखितवदनैः सुखितानि-सुखस्य मुखधर्मत्वाभावात्

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुखाभिव्यंजकप्रसन्नत्वादि- चिह्नयुक्तानि वदनानि मुखानि येषां तैः सुहृद्भिः = सुहृदयैः मित्रैर्गोपालैः सह अतीव शुशुभे - अतीव शोभामगात्। स जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु। पूर्ववदर्थः।।

कदम्बच्छायायां धृतविपिनपुष्पाभरणकस् -
त्रिभङ्गाकारो यः कृतमधुरवंशीकलरवः।
कटाक्षाक्षेपेण व्रजपुरवधूनां हि सुखदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।८३।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— कदम्बस्य छायायां धृतानि विपिनस्य पुष्पाणि तेषाम् आभरणं येन सः। त्रिभंगेन (उपलक्षितः) आकारः यस्य सः। कृतः मधुरः वंश्याः कलरवः येन सः तथाभूतः। यः कटाक्षयोः आक्षेपेण व्रजपुरस्य वधूनां हि सुखदः। जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु।

भाषार्थ— कदम्ब वृक्ष की छाया में वन के पुष्पों का आभूषण बनाने वाले, त्रिभंग से प्रकट आकार वाले, मधुर वंशी का कलरव करने वाले, अपने कटाक्ष के आक्षेप से व्रजपुर की स्त्रियों को सुख देने वाले जगन्नाथ स्वामी मेरे नयनों के गोचर बनें।।८३।।

विवृत्तिः— कदम्बच्छायायामिति— कदम्बच्छायायां = कदम्बतरोश्छायायां तदधस्तादित्यर्थः। धृतविपिनपुष्पाभरणकः = धृतानि विपिनपुष्पाणि = आरण्यककुसुमानि तेषामाभरणानि तद्रचितानि भूषणानि येन तथोक्तः। त्रिभंगाकारः = त्रिभंगेन पादकटिकण्ठप्रदेशेषु किंचित् कौटिल्येन उपलक्षित आकारो दिव्यमंगलविग्रहो यस्य स तथोक्तः। कृतमधुरवंशीकलरवः - कृतः = मधुरः, श्राव्यः, वंश्याः = मुरल्याः कलरवो येन तथोक्तः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

माधुर्यस्य पृथगुपादानात् कलशब्देनाव्यक्तत्वमात्रग्रहणम् कटाक्षाक्षेपेणअपांगदर्शनविलासेन व्रजपुरवधूनां = मथुरा-वृन्दावनादिव्रजनगरवासिनीनां च स्त्रीणां सुखदः अतिशयिताह्लादप्रदः यो हि एवम्भूतो यः प्रसिद्धो यदुकुलतिलको भगवान् स जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु। पूर्ववदर्थः।

मनोहारी हारी व्रजवनविहारी यदुपति-
र्द्विषद्दारी तारी हृदि शिवविचारी सुमनसाम्।
सदा संचारी यो दिनकरकुमारीकलतटे
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।८४।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— मनः हरति इति तथाभूतः, हारी, व्रजवने विहरति तथाभूतः, द्विषतः दारी, तारी, हृदि शोभनं मनः येषां तथाभूतानां शिवं विचारयति तथाभूतः, यः दिनकरस्य कुमार्याः कलतटे सदा संचारी जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु।

भाषार्थ— मन को हर लेने वाले, हार से युक्त, वृन्दावन में विहार करने वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, (संसार के) तारक, हृदय में अच्छा विचार करने वाले (अपने भक्तों का) कल्याण सोचने वाले, सूर्यपुत्री यमुना के कलरव से परिपूर्ण तट पर सदा विचरण करने वाले जगन्नाथ स्वामी मेरे नयनों के गोचर बनें।।८४।।

विवृत्तिः— मनोहारीति-मनो हरति, स्वीयदिव्य-मंगलविग्रहसौन्दर्यं पश्यतां मन आकर्षतीति मनोहारी हारी वनमालादिहारयुक्तः व्रजवने = वृन्दावने विहरतीति व्रजवनविहारी, द्विषतः शत्रून् दृणातीति द्विषद्दारी - शत्रुनाशक इत्यर्थः। तारी - तारणं तारः कर्तृतया सोऽस्यास्तीति तारी संसारतारक इत्यर्थः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

हृदि-स्वान्तःकरणे सुमनसां शोभनं स्वविषयकं मनो येषां ते सुमनसः तेषां स्वभक्तानामित्यर्थः। शिवं कल्याणं विचारयतीति शिवविचारी-कल्याण- विषयकसंकल्पवानित्यर्थः। दिनकरकुमारीकलतटे दिनकरकुमार्याः सूर्यपुत्र्याः यमुनायाः कलतटे कोकिलभ्रमराद्यव्यक्तमधुरध्वनिना रमणीये तीरे सदा संचारी संचरणकर्ता विहर्तेति यावत्। एवम्भूतो यदुपतिः श्रीकृष्णः स जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु। पूर्ववदर्थः।

भवान्तर्यामी यो वरविहगगामी स्वसुखदः।
सतामात्मारामी कटिकनकदामी विभुवपुः
सुधामी शंधामी जनसुगतिकामी करुणया
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।८५।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यः भवस्य अन्तर्यामी, वरः यः विहगः तेन गच्छति तथाभूतः, स्वं सुखं ददाति तथाभूतः, सताम् आत्मा एव आरामः अस्ति यस्य तथाभूतः, कट्यां कनकस्य दाम वर्तते यस्य स तथाभूतः, विभु वपुः यस्य सः, शोभनानि धामानि सन्ति अस्मिन् स तथाभूतः, शं दधति इति शंधाः, अथवा शं दधति ये ते शंधाः तान् अमति स तथाभूतः, करुणया जनानां सुगतिं कामयते तथाभूतः सः जगन्नाथ स्वामी मे नयनपथगामी भवतु।

भाषार्थ— जो विश्व के अन्दर प्रविष्ट होकर नियमन करने वाले हैं, श्रेष्ठ पक्षी जो (गरुड़) उसके द्वारा विचरण करने वाले, अपने सुख को प्रदान करने वाले, अच्छे लोगों का स्वयं ही विहरण स्थान बनने वाले, कमर में सोने की मेखला को धारण करने वाले, व्यापक स्वरूप वाले सुन्दर भोग्य स्थानों को अपने में रखने वाले, सुख धारण करने

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

वाले अथवा शं या ब्रह्म को धारण करने वाले भक्तों को प्राप्त होने वाले, करुणा से लोगों की सुगति या मोक्ष को चाहने वाले जगन्नाथ स्वामी मेरे नयनों के गोचर बने।।८५।।

विवृत्तिः— भवान्तर्यामीति— भवान्तर्यामी भवतीति भवः चेतनाचेतनात्मकं जगत् तस्यान्तर्यामी = अन्तः प्रविश्य नियन्ता, वरविहगगामी = वरः श्रेष्ठो विहगः पक्षी गरुडः तेन गच्छतीति तथोक्तः, सतां - स्वज्ञानेन सत्तावतां - स्वभक्तानामिति यावत्, स्वसुखदः = स्वविषयकानुभवरूपसुखप्रदः, स्वसुखसमानसुखप्रदः इति वार्थः। आत्मैवारामो विहरणस्थानमस्यास्तीति वा आत्मन्येवारमतीति वा आत्मारामी - स्वस्वरूपानुभवानन्द इत्यर्थः। कटिकनकदामी-कट्यां कनकदाम - सौवर्णसूत्रं कटिकनकदाम - सप्तमीति योगविभागात् समासः। तदस्यास्तीति कटिकनकदामो - दिव्यमंगलविग्रहः, अर्श आदित्वादचि नस्तद्धित इति टिलोपः - सोऽस्यास्तीति तथोक्तः। अत इनिठनावितीनिः। कटिकनकदामन्निति— नान्ताद् व्रीह्यादित्वादिनिरिति व्याख्यानं तु न सत्— व्रीह्यादेराकृतिगणत्वाभावात्। विभुवपुः- वपुः शब्दः स्वरूपपरः - व्यापकस्वरूपमित्यर्थः। विग्रहस्यापि व्यापकत्वाद् व्यापकविग्रह इति वार्थः। सुधामी - शोभनानि धामानि-भोगस्थानानि सन्त्यस्मिन्निति सुधामः। धामशब्दो भोग्यादेरप्युपलक्षकः। भोग्यभोग्याऽपकरणभोगस्थानसमृद्धदिव्यलोक इत्यर्थः। अथवा सुष्ठु धाम प्रकाशोऽस्यास्तीति सुधामः स्वयं प्रकाशमानः, स एव लोकः सोऽस्यास्तीति सुधामी = वैकुण्ठनायक इत्यर्थः। अर्श आद्यजन्तादिनिः। यद्वा शोभनो धो धर्मरतिः सुधः तममति गच्छतीति सुधामी। धर्मसंस्थापनपर इत्यर्थः। बन्धने धो धने धश्च धश्च धर्मरतिर्मतेति

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विश्वः। शंधामी—शं सुखम् अपवर्गं दधत्यादधति भक्त्येति शंधाः। यद्वा शं परं ब्रह्म दधति हृदये धरन्ति ध्यायन्तीति शंधाः भक्ता इत्यर्थः। शं कल्याणे सुखे शं च शं परं ब्रह्मणि स्मृतमिति विश्वः। तानमति = कृपया प्राप्नोतीति शंधामी। '*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्*[१]', '*भक्तानां पुरतस्स्थितम्*' इत्यादि स्मर्यते। अथवा शं कल्याणस्य सुखस्य बाधाममति-स्वाश्रितान् स्थानभूतान् करोतीति शंधामी जनसुगतिकामी = जनानां स्वाश्रितजनानां सुगतिं शोभनां गतिं मोक्षं कामयत इति तथोक्तः। एवम्भूतो यो भगवान् स जगन्नाथः स्वामी करुणया मे नयनपथगामी भवतु। पूर्ववदर्थः

प्रवीरै राजन्त्यां मदन-बल-शैनेय-सुभगैः
सुधर्मायां सिंहासनवरगतो योऽतिशुशुभे।
चतुर्बाहुः श्यामो धनुरसिगदाद्यायुधधरो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।८६।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— मदनश्च, बलश्च शैनेयश्च तैः सुभगैः प्रकृष्टैः वीरैः राजन्त्यां सुधर्मायां सिंहासनेषु यद् वरं तद् गतः, चत्वारो बाहवो यस्य स तथाभूतः श्यामः, धनुषः असेः गदादीनाम् आयुधानां धरः यः अतिशुशुभे (सः) जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु।

भाषार्थ— मदन, बल, शैनेय इन सुन्दर तथा प्रकृष्ट वीरों के द्वारा शोभित होने वाली सुधर्मा नामक सभा में सिहासनों में श्रेष्ठ सिंहासन में अधिष्ठित, चार भुजाओं वाले, श्याम वर्ण वाले, धनुष, तलवार, गदा इत्यादि आयुधों को धारण करने वाले जो सुशोभित हुए वे जगन्नाथ स्वामी मेरे नयनों के गोचर बने।।८६।।

---

१. भगवद्गीता ४.११

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विवृत्तिः — प्रवीरैरिति-मदनबलशैनेयसुभगैः = मदनः प्रद्युम्नः, बलो बलरामः, शैनेयः = सात्यकिः प्रधानभूतैरेतैः सुभगैः शोभमानैः प्रवीरैः प्रकृष्टैर्वीरैर्महारथैः राजन्त्यां शोभमानायां सुधर्मायां सुधर्माख्यसभायां सिंहासनवरगतः सिंहासनेषु वरं श्रेष्ठं सिंहासनमित्यर्थः, तद्गतः अधिष्ठितः, चत्वारो बाहवो यस्य स चतुर्बाहुः, श्यामः - नवजलधरसुन्दरविग्रहः, धनुरसिगदाद्यायुधधरः धनुरसिगदाद्यायुधानां शाङ्र्गनन्दककौमोदक्यादि दिव्यायुधानां धरः इति तथाभूतः एवम्भूतो यो यदुकुलतिलको भगवान् अतिशुशुभे = अतीव रेजे। स जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु। पूर्ववदर्थः।

निहन्ता कंसं च प्रबल-मुर-भौमादिविकटान्
नियन्ता विश्वस्य प्रचुरतरपाखण्डदलनः।
सुयन्ता संगोप्ताऽमरपतिसुतस्यात्मविभवो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।८७।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— प्रकृष्टं बलं यस्य तथाभूतो यो मुरश्च भौमादयश्च तेभ्यो विकटान् कंसं च निहन्ता, विश्वस्य नियन्ता, प्रचुरतराणां पाखण्डानां दलनः, अमराणां पत्युः सुतस्य सुयन्ता संगोप्ता, आत्मना विभवं यस्य स तथाभूतः जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु।

भाषार्थ— प्रकृष्ट बल वाले मुर, भौम असुर आदि विकट लोगों का तथा कंस का भी संहार करने वाला, विश्व का नियमन करने वाला, अत्यन्त प्रचुर पाखण्डों का दलन करने वाला, अमर पति या इन्द्र के पुत्र अर्जुन के (रथ का) भली प्रकार नियमन एवं रक्षा करने वाला, अपने द्वारा ही ऐश्वर्य वाला जगन्नाथ स्वामी मेरे नयनों के गोचर बनें।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अनुशीलन— यहाँ विवृत्तिकार ने कोषकारों के प्रमाण के आधार पर पाखण्ड शब्द का पा तथा खण्ड इस प्रकार विग्रह किया है। परन्तु 'पा' शब्द का तीन वेदों के अर्थ में स्वतन्त्र प्रयोग देखने में नहीं आता। अतः प्रकट है कि 'पाखण्ड' की व्याख्या के लिये इस शब्द को गढ़ा गया है। इस प्रकार यह कृत्रिम व्युत्पत्ति है।भाषावैज्ञानिक दृष्टि से इसका विग्रह 'उप + आ + षण्ड' इस रूप में हो सकता है। यहाँ वास्तव में अधूरे अर्थ में 'षण्ड' शब्द रहा है। इस षकार को खकार के रूप में अशुद्ध उच्चारण के द्वारा खण्ड पढ़ा जाने लगा है। संस्कृत व्याकरण तथा प्राकृत मे भी उप के उकार का लोप प्रायः होता है। जैसे उपग्रह > पगहा या उपराग > पराग आदि में देखा गया है। इसी प्रकार यहाँ उकार का लोप होकर तथा षकार के स्थान में खकार के प्रयोग के द्वारा 'पाखण्ड' शब्द 'लगभग अधूरा' इस अर्थ में निर्मित हुआ है।।८७।।

विवृत्तिः— निहन्तेति— प्रबल-मुर-भौमादिविकटान् प्रकृष्टं बलं सैन्यं सामर्थ्यं च येषां तथाभूतान् मुरभौमासुरप्रभृतीन् दुर्जयान् कंसं च निहन्ता तटसंहारकारक इत्यर्थः। निहन्तेति तृन्नन्तम्, अतो न लोकेति षष्ठ्या निषेधः। विश्वस्य कृत्स्नस्य जगतः नियन्ता अन्तः प्रविश्य नियमनकर्ता, प्रचुरतरपाखण्डदलनः—प्रचुरतराणामतिप्रभूतानां पाखण्डानां, '*पा शब्देन त्रयो वेदाः, पालनाज्जगतस्स्मृताः, तान् खण्डयति यो मोहात् स वै पाखण्ड उच्यते*'[१] इत्युक्तलक्षणानां वेदनिन्दकानां तद्विरुद्धाधर्मपराणां दलनः भेदनकर्ता तन्निग्राहक

---

१. तुलनीयम्- पालनाच्च त्रयी धर्मः पाशब्देन निगद्यते।
तं खण्डयति ते यस्मात् पाखण्डास्तेन हेतुना।।
—अमरकोशे सुधा व्याख्या

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

इत्यर्थः। अमरपतिसुतस्यं इन्द्रसूनोरर्जुनस्य सुयन्ता समीचीनः सारथिः सम्यक् रक्षकश्च, आत्मविभवः = आत्मना स्वेनैव विभव ऐश्वर्यं यस्य स तथोक्तः, अनन्याधीनैश्वर्य इत्यर्थः। एवम्भूतो जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु। पूर्ववदर्थः।

सरय्वास्तीरे यो वरभरतशत्रुघ्नसहितः,
सुमित्रापुत्रेण प्रविलसति लीलातिललितः।
सुहृद्भिः संयुक्तो धृतसशरकोदण्डसुभुजो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।८८।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— वरः यः भरतः शत्रुघ्नश्च ताभ्यां सहितः लीलया अतिललितः, सुहृद्भिः संयुक्तः, धृतं शरेण सहितं कोदण्डं याभ्यां तथाभूतौ भुजौ यस्य स तथाभूतः यः सरय्वाः तीरे सुमित्रायाः पुत्रेण (सह) प्रविलसति (स) जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु।

भाषार्थ— श्रेष्ठ भरत तथा शत्रुघ्न के साथ लीला से अत्यन्त मनोहर, मित्रों से युक्त, बाण के साथ धनुष वाली भुजाओं वाले, जो सरयू के तीर में सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण के साथ विराजते हैं वे जगन्नाथ स्वामी मेरे नयनों के गोचर बनें।।८८।।

विवृत्तिः— सरय्वा इति - वरभरतशत्रुघ्नसहितः वरः भक्तश्रेष्ठो यो भरतः शत्रुघ्नश्च ताभ्यां-सहितः। यद्वा अवरेतिच्छेदः। अवरौ कनिष्ठभ्रातरौ यौ भरतशत्रुघ्नौ ताभ्यां सहित इत्यर्थः। सुमित्रापुत्रेण लक्ष्मणेन सहित इत्येकदेशोऽनुषज्यते। सुमित्रापुत्रेण सह प्रविलसतीति वान्वयः। लीलातिललितः लीलया अतिललितः अतिमनोहरः, अतिमनोहर- लीलारत इत्यर्थः। सुहृद्भिर्मित्रैः संयुक्तः - सम्यग् युक्तः, परत्वानाविष्कारेण प्राकृतजनवत् सहित

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

इत्यर्थः। धृतसशरकोदण्डसुभुजः-धृतं सशरं बाणसहितं कोदण्डं धनुर्याभ्यां तौ शोभनौ भुजौ यस्य स तथोक्तः। एवम्भूतो यो रघुकुलतिलको भगवान् सरय्वाः सरयूनद्यास्तीरे = पुलिनप्रदेशे प्रविलसति प्रकर्षेण = राजते। विलासं करोतीति वा वर्तमाननिर्देशः। सर्वकालाभिप्रायः। स जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी मे भवतु। पूर्ववदर्थः।

कदाचिद्रत्नाढ्ये हिमगिरिसुश्रृंगोपमगृहे
सखीभिः संयुक्तो जनकतनयाभ्राजितभुजः।
सुपुष्पालंकारैरतिलसितसर्वांगसुभगो,
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।८९।।

सुक्षेमा—अन्वयसमासादिः— कदाचित् रत्नैः आढ्ये हिमगिरेः यत् शोभनं श्रृंगं तेन उपमा यस्य तथाभूते गृहे सखीभिः संयुक्तः, जनकस्य तनयया भ्राजितौ भुजौ यस्य तथाभूतः, शोभनानां पुष्पाणाम् अलंकारैः अतिलसितानि सर्वांगानि तैः सुभगः जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु।

भाषार्थ— किसी समय रत्नों से परिपूर्ण, हिमालय के सुन्दर शिखर की उपमा वाले भवन में सखियों से युक्त, जनक की पुत्री सीता से अलंकृत भुजा वाले, सुन्दर पुष्पों के अलंकार से अत्यन्त प्रदीप्त सभी अंगों वाले जगन्नाथ स्वामी मेरे नयनों के गोचर बनें।।८९।।

विवृत्तिः— कदाचिदिति-कदाचित् कस्मिंश्चित् काले रत्नाढ्ये-रत्नैः पद्मरागमरकतादिनानाविधमणिभिः आढ्ये परिपूर्णे तैः खचित इत्यर्थः। हिमगिरिसुश्रृंगोपमगृहे - हिमगिरेर्हिमाचलस्य सुश्रृंगम्-औन्नत्येन नानाविध- धातुभिश्च सुन्दरं शिखरं तेनोपमा

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सादृश्यं यस्य तथाभूते गृहे दिव्यभवने सखीभिः जानक्याः सखीभिः संयुक्तः = परिवृतः, जनकतनयाभ्राजितभुजः = जनकतनयया = सीतया, भ्राजितौ = आलिंगनादिविहारसमये शोभमानौ भुजौ यस्य स तथोक्तः, सुपुष्पालंकारैः = सुन्दर-पुष्पविरचितैरलंकारैः सुन्दरपुष्पैः - अलंकारैर्भूषणैश्चेति वा। अतिलसितसर्वांगसुभगः अतिलसितानि अतिशयेन प्रकाशमानानि सर्वांगानि - अवयवाः तैः सुभगो रमणीयः। एवम्भूतो जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु। पूर्ववदर्थः।

विजेता शत्रूणां निशिचरकुलोद्भूतजनुषाम
ऋषीणां संगोप्तोदधिविपुलसेतो रचयिता।
प्रदाता गृध्रस्याद्भुतगतिमगुर्यान् न मुनयो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।९०।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— निशिचराणां कुले उद्भूतं जनुः येषां तथाभूतानां शत्रूणां विजेता, ऋषीणां संगोप्ता, उदधौ विपुलस्य सेतोः रचयिता, यां गतिं मुनयः न अगुः (ताम्) अद्भुतगतिं गृध्रस्य प्रदाता (एवम्भूतः) जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु।

भाषार्थ— रात्रि में विचरण करने वाले राक्षसों के कुल में उत्कृष्टभूत जन्म वाले रावण आदि शत्रुओं के विजेता, ऋषियों की रक्षा करने वाले, समुद्र में विशाल पुल का निर्माण करने वाले, जिस गति को मुनि भी नहीं प्राप्त कर सके उस अद्भुत गति-मुक्ति को गृध्र के लिये प्रदान करने वाले जो जगन्नाथ स्वामी वे मेरे नयनों के गोचर बनें।।९०।।

विवृत्तिः— विजेतेति-निशिचरकुलोद्भूतजनुषां निशिचराणां रक्षसां कुले उद्भूतं उत्कृष्टभूतं जनुर्जन्म येषां तेषां शत्रूणां

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

रावणादीनां विजेता = निहन्ता, अत एव ऋषीणां - दण्डकारण्यवासिनां- तपस्विनां संगोप्ता-सम्यक् रक्षकः, उदधिविपुलसेतोः = उदधौ समुद्रे विपुलस्य विस्तीर्णस्य सेतोः सप्तमीति योगविभागात् समासः। उदधेर्विपुलसेतोरिति षष्ठीसमासो वा, रचयिता - कारयिता। यां गतिं मुनयः - निरन्तरमननशीला अपि नागुः = नावापुः। तामद्भुतगतिं मुक्तिं गृध्रस्य जटायुषः, सम्प्रदानस्य सम्बन्धत्वविवक्षया षष्ठी। प्रदाता- प्रकर्षेण दाता। तृन्नन्तमिदम्। अतो न लोकेति निषेधान् न गतिशब्दात् षष्ठी। एवंभूतो जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु। पूर्ववदर्थः।

दयापारावारो वरगुणगणस्यैकनिलयो
यशोभाः संशुद्धिं यदशुचिजनोऽपि प्रलभते,
मरालो यत्पादः शिवमनसि सम्मानससरे
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।९१।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यस्मात् अशुचिः जनः अपि संशुद्धिं प्रकर्षेण लभते, शिवस्य मनसि सम्मानससरे यस्य पादः मरालः, दयाया पारावारः, वराः ये गुणाः तेषां गणस्य एकः निलयः, यशसा भासते इति तथाभूतः (सः) जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु।

भाषार्थ— जिनसे अपवित्र मनुष्य भी शुद्धि को भली प्रकार प्राप्त करता है, शिव के मन रूपी मानस सरोवर में जिनके चरण हंस रूप हैं दया के समुद्र, श्रेष्ठ गुणों के समूह के एकमात्र निवासस्थान, यश से प्रकाशित होने वाले जगन्नाथ स्वामी मेरे नयनों के गोचर बनें।।९१।।

विवृत्तिः— दयापारावार इति- यद्यस्मात् पतितपावनात् जगन्नाथस्वामिनः अशुचिजनोऽपि अतिपापिष्ठो जनोऽपि संशुद्धिं

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

= सम्यक् शुद्धिं पवित्रतां पापविनाशप्रयोज्यां प्रलभते = प्रकर्षेण लभते। वासना निवृत्तिसहितं प्राप्नोतीत्यर्थः। शिवमनसि शिवस्य-रुद्रस्य मनसि-अन्तःकरणरूपे सम्मानससरे = समीचीनमानस-सरसि। सान्तानामदन्तत्वाददन्तोऽपि सरशब्दः। यत्पादः = यस्य जगन्नाथस्वामिनः पादश्चरणः मरालो हंसरूपः यच्चरणारविन्दध्यानपरः शिव इति यावत्। दयापारावारः = दयायाः पारावारः समुद्रः कृपानिधिरित्यर्थः। वरगुणगणस्य = वराः श्रेष्ठाः कल्याणाः गुणाः ज्ञानशक्त्यादयः तेषां गणस्य-समूहस्य एक निलयः = मुख्याधारः = अव्यभिचरिताधार इत्यर्थः। यशोभाः - यशसा शरणागतरक्षकत्वपतितपावनत्वादिगुणवता प्रथया भासंत इति तथोक्तः। भासेः क्विप्-एवम्भूतः स जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु। पूर्ववदर्थः।

सृजा शक्त्या सृष्टिं पुनरपि च हर्त्र्यैव हरणं
सुपालिन्या पालं स्वशरणशरण्यः प्रकुरुते।
य ईदृग्गौरीशः प्रभुरपि च तस्यापि सुखदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।१२।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— सृजा शक्त्या सृष्टिं प्रकुरुते, पुनरपि च हर्त्र्या एव हरणं प्रकुरुते, स्वशरणं येषां तथाभूतानां शरण्यः, सुष्ठु पालिन्या पालं प्रकुरुते। ईदृक् यो गौरीशः तस्य अपि प्रभुः सुखदः जगन्नाथस्वामी मे नयनपथगामी भवतु।

भाषार्थ— जो सृजन शक्ति से सृष्टि करता है। पुनः संहार शक्ति से विनाश करता है, अपने शरण में आए हुए लोगों का रक्षक सुन्दर

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

पालक शक्ति से पालन करता है। इस प्रकार का जो गौरीश या रुद्र उसके भी प्रभु, सुख देने वाले जगन्नाथ स्वामी मेरे नयनों के गोचर बनें।।९२।।

विवृत्तिः— सृजेति-सृजा सृजतीति सृक् तया करणे कर्तृत्वमुपचारात्। यद्वा सृज्यते अनयेति सृक् तया शक्त्या सृष्ट्यौपयिक्या शक्त्या, सृष्टिं प्रकुरुते प्रकर्षेण इतरवैलक्षण्येन कुरुत इत्यर्थः। पुनरपि च अपिचेत्यव्ययसमुदायो नतिरिक्तार्थः- सृष्ट्यनन्तरमित्यर्थः। हर्त्र्येति-अत्रापि करणे कर्तृत्वमुपचारात्, शक्त्येति चानुषज्यते। हरणौपयिक्या शक्त्यैव हरणं संहारं प्रकुरुते इत्यर्थः। एवकारो लौकिकजनेष्विव उपकरणान्तर- सापेक्षत्वं व्यवच्छिनत्ति। स्वशरणशरण्यः = स्वशरणं येषां ते स्वशरणाः स्वशरणागता इत्यर्थः। यद्वा सुष्ठु न विद्यते शरणं रक्षको येषां ते स्वशरणा अनन्यगतिका इत्यर्थः। तेषां शरण्यः-शरणे साधुः रक्षक इत्यर्थः। सुपालिन्येति-सुष्ठु पालयतीति सुपालिनी तयेत्यर्थः। अत्रापि करणे कर्तृत्वम्। पूर्ववत् शक्त्येत्यप्यनुषज्यते। रक्षणौपयिक्या शक्त्या पालं भावे घञ्, रक्षणं प्रकुरुत इत्यर्थः। ईदृक् एवंभूतो जगत्सृष्ट्यादिकर्ता यो गौरीशो रुद्रः तस्यापि प्रभुः सृष्ट्याद्यौपयिकशक्तिप्रदः, अपि च सुखदः - सुखप्रदातापि चेत्यर्थः। एवम्भूतो जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु। पूर्ववदर्थः।

सतां धर्माचार्यो मुनिजनसुविज्ञानदपरो
महान् योगाचार्यः प्रकृतिपतिरित्यद्भुतकलः।
महादेवस्तस्यामलमनसि यच्चारुचरणौ
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।९३।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— सतां धर्माचार्यः, मुनिजनानां यत् शोभनं तस्य दः तत्र परः, महान् योगस्य आचार्यः, प्रकृतीनां पतिः, अत्यद्भुताः कलाः यस्य स तथाभूतः यः महादेवः तस्य अमले मनसि यस्य चारु चरणौ (विलसतः सः) जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु।

भाषार्थ— जो सत्पुरुषों को धर्म का उपदेश करने वाला है, मुनि लोगों का जो सुन्दर (भगवद्विषयक) ज्ञान है उसके दान में लगा हुआ, महान् योग का आचार्य, प्रजाओं का स्वामी, अत्यन्त अद्भुत विद्याओं वाला जो महादेव या रुद्र उसके निर्मल मन में जिसके सुन्दर चरण विराजते हैं, ऐसे जो जगन्नाथ स्वामी वे मेरे नयनों के गोचर बनें।।९३।।

विवृत्तिः — सतामिति-सतां सत्पुरुषाणां धर्माचार्यो धर्मोपदेष्टा मुनिजनसुविज्ञानदपरः मुनिजनानां मननशीलानां जनानां सुविज्ञानं शोभनभगवद्विषयकं ज्ञानं तस्य दः दानम्। दः कलत्रे बुधैः प्रोक्तो दानच्छेदनदातृष्विति विश्वः। तत्रपर आसक्तः। अथवा मुनिज्ञानसुविज्ञानदेषु नारदादिषु परः श्रेष्ठ इत्यर्थः। महान् जगत्पूज्यो योगाचार्यः योगप्रवर्तकः योगोपदेष्टा च प्रकृतिपतिः प्रकृतयः प्रजाः तासां पतिः स्वामी-अत्यद्भुतकलः - अत्यद्भुता अत्याश्चर्याः कला विद्या यस्य स तथोक्तः। एवंभूतो यो महादेवो रुद्रः तस्य अमलमनसि निर्मलान्तःकरणे यच्चारुचरणौ यस्य जगन्नाथस्वामिनो चारु रमणीयौ चरणौ विलसत इत्यर्थः। स जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु। पूर्ववदर्थः।

हरेर्नाथो हारी हरिपतिपतिः संहरिमुखो
हरेर्दीप्तेर्दीप्तिर्हरिवहसुशिष्यच्छलकरः ।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

हरेर्मित्रं चित्रं हरिकटिरनादिर्हरिगति-
र्जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।९४।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— हरेः नाथः हारी हरीणां पतिः तस्यापि पतिः, संहरिः इव मुखं यस्य स तथोक्तः, हरेः दीप्तेः दीप्तिः, हरिः वहः यस्य तथाभूतः तस्य सुशिष्यः तस्य छलं करोति इति तथाभूतः, हरेः चित्रं मित्रं, हरेः कटिरिव कटिः यस्य स तथोक्तः, न विद्यते आदिः यस्य स तथोक्तः, हरेः गतिरिव गतिः यस्य स तथाभूतः जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु।

भाषार्थ— हरि अर्थात् इन्द्र के नाथ या स्वामी, हार वाले, हरि अर्थात् सर्प, उनके पति शेष उनके भी पति या स्वामी, संहरि अर्थात् सम्पूर्ण चन्द्रमा के सदृश मुख वाले, हरि अर्थात् सूर्य की दीप्ति के भी दीप्ति या प्रकाशक, हरि अर्थात् मेढक ही वह अर्थात् वाहन वाले जो शुक्राचार्य, उनके शोभित शिष्य जो बलि उनसे छल करने वाले, हरि अर्थात् कपि सुग्रीव के अद्वितीय मित्र, हरि अर्थात् सिंह की कटि के समान मध्यभाग वाले, आदि या उत्पत्ति से रहित, वायु की गति के समान गति वाले जो जगन्नाथ स्वामी वे मेरे नयनों के गोचर बनें।

अनुशीलन— कोष में हरि के १४ अर्थ बताए गए हैं। उनमें से ८ अर्थों का सहारा लेकर यह अलौकिक श्लोक-रचना की गई है।।९४।।

विवृत्तिः— हरेरिति - हरेः इन्द्रस्य नाथः स्वामी ,हारी वनमालादिहारसहितः, सांसारिकतापत्रयस्य हरणकारी वा हारशब्दादिनिः। हरिपतिपतिः— हरयः सर्पाः तेषां पतिः शेषः तस्य पतिः स्वामी, शेषशायीत्यर्थः। संहरिमुखः - संहरिः सम्पूर्णो हरिः

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

पूर्णचन्द्रः, तद्वन्मुखं यस्य स तथोक्तः। हरेः - सूर्यस्य दीप्तेः प्रकाशस्यापि दीप्तिः, प्रकाशक इत्यर्थः। हेतुहेतुमतोरैक्यव्यपदेशः। हरिवहसुशिष्यच्छलकरः = हरिर्भेकः, वहतीति वहः। पचाद्यच्। वाहनमित्यर्थः। हरिर्वहो यस्य स हरिवहः - शुक्राचार्यः तस्य सुशिष्यो बलिः तस्यच्छलकरः = वंचनकारी, वामनावतारे प्रसिद्धमेतत्। हरेः कपेः सुग्रीवस्य चित्रं मित्रम् आश्चर्यरूपः अद्वितीयसुहृत्। हरिकटिः हरेः सिंहस्य कटिरिव कटिः मध्यदेशो यस्य स तथोक्तः। अनादिः - न विद्यते आदिरुत्पत्तिर्यस्य स तथोक्तः। कर्माधीनोत्पत्तिरहित इत्यर्थः। हरिगतिः वायोः गतिरिव गतिः यस्य स तथोक्तः। शरणागतगजेन्द्रादिरक्षणार्थं वायुवच्छीघ्रगामीत्यर्थः। यद्वा हरेर्वायोर्गतिर्यस्मात् स तथोक्तः। तथा च श्रुतिः '*भीषास्माद् वातः पवते*'[१] इति। भागवते च *यद्भयाद् वाति वातोऽयमिति। हरिर्वातार्कचन्द्रेन्द्रयमोपेन्द्रमरीचिषु*, सिंहाहिकपिभेकेषु शुकलोकान्तरेषु चेति विश्वः। एवम्भूतो जगन्नाथः स्वामी मे नयनपथगामी भवतु। पूर्ववदर्थः।

शरन्मेघाकारो हलमुसलसन्धारणपरो
धराधारोऽभारो नकलिविकारापहरणः।
य ईदृक्छ्रीरामः, शुभगतिकरस्तेन सहितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।९५।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— शरदि मेघ इव आकारः यस्य स तथोक्तः, हलं च मुसलं च तयोः सम्यक् धारणे परः, धरां पृथिवीं धरति इति तथाभूतः, न विद्यते भारः यस्य स तथोक्तः, जनानां ये कलिविकाराः तेषाम्

---
१. तैत्तिरीय उपनिषद् २.८

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अपहरण:, शुभां गतिं करोति इति तथाभूत:, ईदृक् य: श्रिया युक्त: राम: तेन सहित: जगन्नाथ: स्वामी मे नयनपथगामी भवतु।

भाषार्थः— शरद् ऋतु में मेघ के समान आकार वाले, हल और मुसल को धारण करने में तत्पर, पृथिवी को धारण करने वाले, (इस पृथिवी धारण मे) जिन्हें कोई भार (क्लेश) नहीं है ऐसे, मनुष्यों के जो कलिजनित विकार या पाप उनका अपहरण करने वाले, शुभगति मोक्ष प्रदान करने वाले— इस प्रकार की श्री या शोभा से युक्त जो बलराम उनके सहित (विराजमान) जगन्नाथ स्वामी मेरे नयनों के गोचर बनें।।९५।।

विवृत्तिः— शरन्मेघाकार इति-शरन्मेघ इव आकारो यस्य शरन्मेघाकार:- अतिस्वच्छदिव्यविग्रह इत्यर्थ:। हलमुसलसन्धारणपर: हलमुसलयोरायुधयो: सम्यक् धारणे परस्तत्पर:। अनेन दुष्टनिग्राहकत्वं व्यज्यते। धराधार: - धरां पृथिवीं धरतीति तथोक्त:। अथापि अभार: - न विद्यते भार: पृथिवीधारणक्लेशो यस्य स तथोक्त:। जनकलिविकारापहरण: - जनानां स्वाश्रितजनानां शेषसम्प्रदायानुवर्तिनां श्रीवैष्णवानां कलिविकारा: कलिकालसम्बन्धीन्यतिपापानि तेषामपहरण: - अपहर्ता विनाशक इत्यर्थ:। बाहुलक: कर्तरि ल्युट्। शुभगतिकर: शुभगतिं मोक्षं करोतीति तथाभूत:, उपदेशादिना स्वाश्रितजनानां मोक्षप्रद इत्यर्थ:। ईदृक् एवम्भूत: य: श्रीराम: श्रिया-ज्ञानबलादिसम्पत्त्या युक्तो राम: बलराम: तेन सहित: दक्षिणपार्श्वे विराजमानो जगन्नाथ: स्वामी मे नयनपथगामी भवतु। पूर्ववदर्थ:।

अहं पापासक्त: प्रभुरपि महापापदहनो,
ऽस्त्यहं हीनाचार: प्रभुरपि समुद्धारणकर:।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विचिन्त्येमं योगं निजचरणपाल्यस्य कृपया
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।९६।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— अहं पापे आसक्तः, प्रभुः अपि महतां पापानां दहनः अस्ति। अहं हीनः आचारः येन स तथोक्तः, प्रभुः अपि समुद्धारणं करोति इति तथाभूतः। इमं योग विचिन्त्य निजचचरणाभ्यां पाल्यस्य मे स्वामी जगन्नाथः कृपया नयनपथगामी भवतु।

भाषार्थ— मै पापों में आसक्त हूँ, प्रभु भी बड़े बड़े पापों के विनाशक हैं। मै हीन आचार वाला हूँ, प्रभु भी भली प्रकार उद्धार करने वाले हैं। इस (मेरे तथा आपके) सम्बन्ध को विचार करके अपने चरणों के द्वारा रक्षणीय मुझ (शरणागत) के स्वामी जगन्नाथ कृपया नयनों के गोचर होवें।।९६।।

विवृत्तिः— अहमिति। अहं पापासक्तः— पापेषु निन्दितकर्मसु आसक्तः - तदेकपरः, प्रभुरपि स्वामी जगन्नाथोऽपि महापापदहनः = महतां पापानां दहनः नाशकः अस्ति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। अहं हीनाचारः हीनः त्यक्तः आचारः शास्त्रविहितधर्मानुष्ठानं येन स तथोक्तः। प्रभुरपि स्वामी जगन्नाथोऽपि समुद्धारणकरः। समुद्धारणं-सम्यक् उद्धारणं करोतीति तथाभूतः। इमं योगं-स्वस्य मम च उचितं-पूर्वोक्तसम्बन्धं विचिन्त्य विचार्य निजचरणपाल्यस्य निजचरणाभ्यां पाल्यस्य रक्ष्यस्य, निजचरणावेवोपायत्वेन स्वीकृतवतः तच्छरणागतस्येत्यर्थः। तस्य मे स्वामी जगन्नाथः कृपया नयनपथगामी चक्षुर्गोचरो भवत्वित्यर्थः। तद्दर्शनेनैवाहं निर्मुक्तपापः स्यामिति भावः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

ओऽसौ यः के सदा शेते केशेशः शंकरः सताम्।
नादिवेदार्णनामा मां कुमेशो विखगोऽवतु।।९७।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— यः के सदा शेते, अः, कस्य ईशस्य च ईशः, सतां शं करोति इति तथोक्तः, नाकारः आदिः यस्मिन् तद् नादिः, वेदसंख्याकानि अर्णानि यस्मिन् तत् वेदार्णम्। नादि च वेदार्णं च नाम यस्य स तथाभूतः। कुश्च मा च तयोः ईशः। विः पक्षी तेन खे गच्छति इति तथोक्तः असौ माम् अवतु।

भाषार्थ— जो जल में सदा निवास करते हैं, अ अर्थात् सृष्टिकर्ता जो क अर्थात् ब्रह्मा, ईश अर्थात् रुद्र के भी ईश हैं, अच्छे लोगों का कल्याण करने वाले हैं, जिनके नाम के आदि में 'ना' है, तथा जिनके नाम में वेद संख्या वाले ४ वर्ण अथवा अक्षर हैं। कु अर्थात् पृथिवी, मा अर्थात् श्री देवी के जो पति हैं। वि अर्थात् पक्षी गरुड़ उसके द्वारा आकाश में विचरण करने वाले ये जगन्नाथ मेरी रक्षा करें।

अनुशीलन— 'नारायण' नाम के आदि में 'ना' अक्षर है तथा इसमें वेदों की संख्या वाले ४ स्वर अक्षर हैं। अत एव इस नाम को उक्त विशेषणों से संकेतित किया गया है।

प्रस्तुत विवरण विष्णुसहस्रनाम में शंकराचार्य के भाष्य से तुलनीय है। वहाँ उन्होंने केशव का विग्रह करते हुए क ब्रह्मा + अ = विष्णु + ईश = शिव जिसके वश में है, उसे केशव कहा है।

प्रस्तुत श्लोक में केशेश शब्द से भी यही भावना प्रकट की गई है। यद्यपि यहाँ 'विष्णु' का संग्रह नहीं हो पाया है। यदि उसका भी संग्रह करना चाहें तो 'अ' का अर्थ विष्णु करना होगा तथा इसके षष्ठी विभक्ति विपरिणाम द्वारा ईश के साथ सम्बन्ध मानना होगा।।९७।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विवृत्तिः— ओसाविति— यो भवान् के जले सदा निरन्तरं शेते। अनेन '*आपो नारा इति प्रोक्ता, आपो वै नरसूनवः। ता पदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः*'[१] इति स्मृत्युक्त-नारायणपदार्थोऽनुसंहितः। अः अकारवाच्यो जगत्सृष्ट्यादिकर्ता, केशेशः = को ब्रह्मा, ईशो रुद्रः - तयोरीशः नियन्ता स्वामीत्यर्थः। सतां मत्पुरुषाणां, स्वभक्तानामित्यर्थः। शंकरः = शं कल्याणं सुखं वा करोतीति शंकरः। नादिवेदार्णनामा = नाकारः आदिः यस्मिन् तत् नादि। वेदसंख्याकानि चत्वार्यर्णानि अक्षराणि यस्मिन् तद्वेदार्णम्, अर्णशब्दो व्यंजनसहितस्वरपरः। नादि वेदार्णं नाम यस्य स तथोक्तः। नारायणाभिध इत्यर्थः। कुमेशः कुः - पृथिवी, भूदेवी, मा- श्रीदेवी तयोरीशः पतिः। विखगः = विः पक्षी गरुडः तेन खे आकाशे गच्छतीति तथोक्तः। यद्वा विशिष्टं खमाकाशं विखं, तद्गच्छतीति विखगः परमाकाश-पदवाच्यपरमपदनिलय इत्यर्थः। असौ भगवान् जगन्नाथः स्वामी माम् अवतु = रक्षत्वित्यर्थः।

तव चरणसरोजं सिद्धदेवेन्द्रवन्द्यं
निखिलपतिततारं ज्ञानविज्ञानकारम्।
निजजनपरिपालं कल्मषाणां हि कालं
मुनिमनसि मरालं विश्वपालन्नमामि।।९८।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— विश्वप! सिद्धैः देवेन्द्रैः वन्द्यं, निखिलान् पतितान् तारयति तथाभूतं तं, ज्ञाने विज्ञाने च करोति तं, निजजनान् परितः

---
१. मनुस्मृति १.१०

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

पालयति तथोक्तं तं, कल्मषाणां हि कालं, मुनीनां मनसि मरालं तव चरणसरोजम् अलं नमामि।

भाषार्थ— हे विश्व का पालन करने वाले! सिद्ध तथा देवताओं में भी श्रेष्ठों के द्वारा वन्दनीय, सभी पतितों को तारने वाले, (भगवद्विषयक) ज्ञान तथा विज्ञान में लगाने वाले, अपने भक्तजनों का पूरी तरह पालन करने वाले, कल्मष या पाप के लिये काल या मृत्युस्वरूप, मुनियों के मन में हंसस्वरूप तुम्हारे चरणकमल को मै अत्यधिक नमस्कार करता हूँ।।९८।।

विवृत्तिः— तवेति - विश्वं पातीति विश्वपः। तस्य सम्बुद्धौ। हे विश्वप! जगन्नायक! सिद्धदेवेन्द्रवन्द्यं = सिद्धाः सनकादयः, देवेन्द्राः = देवश्रेष्ठाः विधिशिवादयः तैर्वन्द्यं = स्तुत्यं, निखिलपतिततारं = निखिलाः सर्वे ये पतिताः = महापातकिनः तान् तारयति - पातित्यादुत्तारयतीति तथोक्तम्। णिजन्तात् तरतेः कर्मण्यण्। ज्ञानविज्ञानकारं = ज्ञानविज्ञाने सामान्यविशेषरूपे भगवद्विषयज्ञाने करोतीति तथाभूतं, निजजनपरिपालं = निजजनान् स्वभक्तजनान् परितः कात्स्न्येंन सर्वात्मना पालयतीति तथाभूतं, कल्मषाणां = दुरितानां कालं = मृत्युं नाशकमित्यर्थः। मुनिमनसि = मुनयो मननशीलाध्यायिन इत्यर्थः। तेषां मनसि = निर्मलमनोरूपे मानससरसि मरालं = हंसवत् विहरणशालीत्यर्थः। एवम्भूतं तव चरणसरोजं = चरणारविन्दम् अलम् अत्यर्थं नमामि = नमस्करोमि = उपायत्वेनाध्यवस्यामीत्यर्थः। विश्वपालमित्येकं पदं वा। तदा तु विश्वपालं नतजनपरिपालनमित्यनयोः सामान्यविशेषपालनाभिप्रायकत्वेन न पुनरुक्तिः। हि शब्दो यथोक्तगुणविशिष्टत्वेन श्रुतिस्मृतिप्रसिद्धिं

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

द्योतयति। इत आरभ्य श्लोकत्रये मालिनी छन्दः। ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैरिति तल्लक्षणात्।

जयतु जलधिवासी नीलशैलेन्द्रभासी
निजजनरिपुनाशी सत्यविश्वप्रकाशी।
व्रजविपिनविलासी सर्वदा मन्दहासी
नरनरकनिरासी दिव्यसौन्दर्यराशी।।९९।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— जलधौ वसति इति तथाभूतः, निजजनानां रिपून् नाशयति इति तथोक्तः, सत्यं विश्वं प्रकाशयति तथाभूतः, व्रजविपिने विलसति तथोक्तः, सर्वदा मन्दं हसति तथाभूतः, नराणां नरकान् निरस्यति तथोक्तः, दिव्यानां सौन्दर्याणां राशः वर्तते यस्य तथाभूतः, नीलशैलेन्द्रे भासते इति तथाभूतः (जगन्नाथः) जयतु।

भाषांर्थ— समुद्र में निवास करने वाले, अपने भक्तजनों के शत्रुओं का विनाश करने वाले, सत्य या मिथ्यारहित विश्व का प्रकाश करने वाले, वृन्दावन में विलास करने वाले, सर्वदा मन्द हास्य रखने वाले, (अपने आश्रित) लोगों के नरक का निवारण करने वाले, दिव्य सौन्दर्य के समूह वाले, श्रेष्ठ नीलाचल में प्रकाशित होने वाले (जगन्नाथ) की जय हो।।९९।।

विवृत्तिः— जयत्विति— जलधिवासी, जलधिशब्दः तत्तीरलाक्षणिकः, जलधौ वसतीति तथोक्तः। यद्वा '*यमन्तः समुद्रे कवयो वयन्ती*' ति श्रुत्युक्तरीत्या समुद्रनिवासीत्यर्थः। निजजनरिपुनाशी = निजजनाः स्वभक्तजनाः तेषां ये रिपवः = शत्रवः तान् नाशयतीति तथोक्तः - दुष्टनिग्राहक इत्यर्थः। सत्यविश्वप्रकाशी - सत्यः निर्विकारः। यद्वा सत् ति यमिति वा एतानि त्रीण्यक्षराणि, 'तद्यत्

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सत् तदमृतम्, अथ यत्ति तन्मर्त्यम्, अथ यद् यन् तेनोभौ यच्छती'ति श्रुत्युक्तरीत्या चेतनाचेतननियन्ता सत्यशब्दार्थः। विश्वप्रकाशी - 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाती'[२]'ति श्रुत्युक्तरीत्या विश्वं कृत्स्नं जगत् प्रकाशयतीति विश्वप्रकाशी स चासौ च तथोक्तः। यद्वा सत्यं परमार्थं विश्वं प्रकाशयतीति तथोक्तः। अनेन जगन्मिथ्यात्ववादनिरासः। व्रजविपिनविलासी - व्रजविपिने वृन्दावनादौ विलसति प्रकाशते विहरतीति वा तथोक्तः। सर्वदा मन्दहासी मन्दं हसतीति तथाभूतः। सर्वदा प्रसन्नवदन इति यावत्। जननरकनिरासी - जनानां स्वाश्रितजनानां नरकान् अनादिकालसञ्चितानन्तदुरितफलानु-भवयोग्यस्थान-रूपान् नरकान् निरस्यतीति तथोक्तः। स्वाश्रितजनान् सर्वपापेभ्यो विमोच्य नरकगमननिवारक इत्यर्थः। दिव्यसौन्दर्यराशी-अनाकृतानां सौन्दर्याणाम् अवयवशोभानां राशः समूहः सोऽस्मिन्नस्तीति दिव्यसौन्दर्यराशो दिव्यमंगलविग्रहः सोऽस्यास्तीति तथोक्तः, सौन्दर्येत्युपलक्षणं, सौन्दर्य-कौमार्याद्यनन्तदिव्यगुणनिधिदिव्य-मंगलविग्रहवानित्यर्थः। अर्शं आद्यजन्तादिनिः। एवम्भूतो नीलशैलेन्द्रभासी - नीलशैलेन्द्रे - नीलाचलश्रेष्ठे भासते प्रकाशत इति वा। नीलशैलेन्द्रं भासयति-स्वदीप्त्या प्रकाशयतीति वा नीलशैलेन्द्रभासी-जगन्नायकः जयतु। सर्वोत्कर्षेण वर्ततामित्यर्थः।

मयि विरतिविहीने सर्वथाऽनाथदीने
मदमदनविलीने त्वं दयां संविधत्स्व।

---

१. तुलनीयम्- तदेतत् त्र्यक्षरं सत्यम्। स इत्येकमक्षरं ति इत्येकमक्षरं यमित्येकमक्षरम्- बृहदारण्यकोपनिषद् ५.५.१

२. श्वेताश्वतरोपनिषद् ६.१४

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

खलसमलकुलीने सर्वदा पापपीने
निजपदजलमीने पामरेऽस्मिन्नवीने।।१००।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— विरत्या विहीने सर्वथा न विद्यते नाथः यस्य तथाभूतेऽस्मिन् दीने च, मदे, मदने च विलीने, खलानां समलानां च कुलीने, सर्वदा पापेन पीने, निजपदम् एव जलं तत्र मीने, नवीने पामरे अस्मिन् मयि त्वं दयां संविधत्स्व।

भाषार्थ— विरति या वैराग्य से विहीन, सर्वथा अनाथ तथा दीन, अभिमान तथा काम में घुस जाने वाले, दुष्ट तथा मलिन कुल में उत्पन्न होने वाले, सर्वदा पाप से परिपुष्ट रहने वाले, अपने चरणरूपी जल में ही मछली रूपी आधार बनाकर रहने वाले, इस अपूर्व नीच मुझ पर तुम अपनी भली प्रकार दया करो।।१००।।

विवृत्तिः— मयीति-विरतिविहीने-विरतिः वैराग्यं विषयवैतृष्ण्यमिति यावत् तया विहीनेत्युक्ते तद्रहिते इत्यर्थः। सर्वथा सर्वप्रकारेण अनाथदीने—न विद्यते नाथः स्वामी रक्षको यस्य सोऽनाथः अत एव दीनः - कृपणः उपायान्तरशून्य इत्यर्थः। अतिखिन्न इति वार्थः। स चासौ स च तथाभूते। नाथेति सम्बुद्ध्यन्तं पृथक् पदं वा। मदमदनविलीने-मदः धनाभिजनाद्यभिमानः, मदनः कामः तयोर्विलीने विशेषतस्तदेकासक्ते, खलसमलकुलीने—खलाः - दुष्टाः, समलाः = मलिनाः तेषां कुलीने तत्कुलप्रसूते तत्प्रदाने इत्यर्थः। सर्वदा सर्वस्मिन्नपि काले पापपीने-पापैः अनादिकालसंचितैः दुष्कर्मभिः पीने पुष्टे पापप्रचुर इत्यर्थः। निजपदजलमीने = निजपदं स्वीयचरणारविन्दमेव जलं तस्मिन् मीने मत्स्यरूपे, जलैकाधारे मत्स्यवत् स्वीयचरणारविन्दैकाश्रय

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

इत्यर्थः। नवीने पामरे - अपूर्वे क्षुद्रे अस्मिन् एवम्भूते मयि त्वं दयावात्सल्यादिगुणनिधिस्त्वं दयां संविधत्स्व = सम्यक् कुरुष्वेत्यर्थः।

नीलाचलनिवासाय दिव्यैश्वर्यविभासिने।
बलभद्रसुभद्राभ्यां जगन्नाथाय ते नमः।।१०१।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— नीलाचले निवासः यस्य तथाभूताय, दिव्येन ऐश्वर्येण विभासते तथाभूताय, बलभद्रेण, सुभद्रया च (सहिताय) जगन्नाथाय ते नमः।

भाषार्थ— नीलाचल में निवास करने वाले, दिव्य ऐश्वर्य से प्रकाशित होने वाले, बलभद्र तथा सुभद्रा के सहित जगन्नाथ को मेरा नमस्कार हो।।१०१।।

विवृत्तिः— नीलाचलनिवासायेति-नीलाचलनिवासाय कृपया स्वाश्रितसमाश्रयणीयत्वाय नीलाद्रावाविर्भूय स्थितवते दिव्यैश्वर्यविभासिने—दिव्येनाप्राकृतेन अत्याश्चर्येण च ऐश्वर्येण विभूत्या विशेषेण भासत इति। दिव्यैश्वर्यविभासी तस्मै बलभद्रसुभद्राभ्यां सहिताय जगन्नाथाय जगत्स्वामिने ते तुभ्यं नम इत्यर्थः।

हे नाथ हे रमानाथ प्रणतार्तिविनाशन
जगन्नाथ दयासिन्धो रघुराजे दयां कुरु।।१०२।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— हे नाथ! हे रमानाथ! प्रणतानाम् आर्तेः विनाशन! दयायाः सिन्धो जगन्नाथ! रघुराजे दयां कुरु।

भाषार्थ— हे स्वामिन्! हे लक्ष्मीपति! भक्तों के कष्टों का विनाश करने वाले, दया के समुद्र! जगन्नाथ! तुम रघुराज पर दया करो।।१०२।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विवृत्तिः— हे नाथेति - हे नाथ = मत्स्वामिन्, हे रमानाथ = लक्ष्मीपते। अनेन लक्ष्मीविशिष्टस्यैव रक्षकत्वं सूच्यते। तथा च वैष्णवं वचः - '*लक्ष्म्या सह हृषीकेशो देव्या कारुण्यरूपया। रक्षकः सर्वसिद्धान्ते वेदान्तेषु च गीयते*' इति। प्रणतार्तिनाशन - प्रणताः प्रकर्षेण नताः प्रणताः भक्ताः शरणागताश्च तेषामार्तेः सांसारिकपीडायाः विनाशन = विनाशक, दयासिन्धो = कृपासमुद्र हे जगन्नाथ! त्वं रघुराजे मयि दयां कुर्वित्यर्थः।

नारायण सुरश्रेष्ठ दीनोद्धार परायण,
जगन्नाथ दयासिन्धो रघुराजे दयां कुरु।।१०३।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— नारायण! सुरेषु श्रेष्ठ! दीनोद्धार! परायण! दयायाः सिन्धो! जगन्नाथ! रघुराजे दयां कुरु।

भाषार्थ— हे नारायण, देवताओं में श्रेष्ठ, दीनों का उद्धार करने वाले, सदा प्रापणीय! दया के समुद्र! जगन्नाथ! तुम रघुराज पर दया करो।।१०३।।

विवृत्तिः— नारायणेति— हे नारायण! नराणां समूहो नारं तस्य अयन आधारभूत-उपायोपेयभूतं चेत्यर्थः। सुरश्रेष्ठ! सुरेषु-ब्रह्मादिषु देवेषु श्रेष्ठ प्रशस्यतर! दीनोद्धार! दीनान् सांसारिकतापत्रयेण खिन्नान् उद्धरतीति तथाभूत। परायण परमप्राप्य! हे दयासिन्धो जगन्नाथ! जगत्स्वामिन् रघुराजे मयि दयां कुर्वित्यर्थः।

जगद्धातर्जगत्त्रातर्जगन्मातर्जगत्पितः।
जगदीश दयासिन्धो रघुराजे दयां कुरु।।१०४।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— जगतः धातः! जगतः त्रातः! जगतः मातः! जगतः पितः! दयायाः सिन्धो! जगदीश! रघुराजे दयां कुरु।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

भाषार्थ— जगत् को धारण करने वाले, जगत् की रक्षा करने वाले, जगत् की माता, जगत् के पिता, दया के समुद्र! जगदीश! तुम रघुराज पर दया करो।।१०४।।

विवृत्तिः— जगद्धातरिति - जगद्धातः = जगदाधार, जगत्त्रातः = जगद्रक्षक, जगन्मातर्जगत्पितः = उपलक्षणमेतत्। जगतः सर्वविधबन्धो। तथा च श्रूयते - माता पिता भ्राता निवासः शरणं सुहृद्गतिर्नारायण इत्यादि। दयासिन्धो, जगदीश! जगन्नियन्तः रघुराजे मयि दयां कुर्वित्यर्थः।

जगदाधार धीरेन्द्र धराधर्मधुरन्धर!
जगन्नाथ दयासिन्धो रघुराजे दयां कुरु।।१०५।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— जगतः आधार! धीराणाम् इन्द्र! धरायां ये धर्माः तेषां धुरं धरति इति तथाभूत! दयायाः सिन्धो! जगन्नाथ! रघुराजे दयां कुरु।

भाषार्थ— जगत् के आधार! धीर या ज्ञानी लोगों के अधिपति! पृथिवी में जो भी धर्म हैं उनके (स्थापन का) भार उठाने वाले, दया के समुद्र! जगन्नाथ! तुम रघुराज पर दया करो।।१०५।।

विवृत्तिः— जगदाधारेति - जगदाधार = जगत्सत्तानिर्वाहक, धीरेन्द्र = धियमीरयन्तीति वा धिया रमन्त इति वा धीराः, ज्ञानिनो ज्ञानप्रदाश्च तेषामिन्द्र = अधिपते सर्वज्ञेत्यर्थः। धराधर्मधुरन्धर = धरायां पृथिव्यां ये धर्माः वैदिकानि स्वभजनादीनि सत्कर्माणि तेषां धुरं तत्संस्थापनभारं धरतीति तथाभूत। पृथिव्यामवतीर्य धर्मसंस्थापनपरेत्यर्थः। दयासिन्धो हे जगन्नाथ! रघुराजे मयि दयां कुर्वित्यर्थः।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

जर्नादन जगद्वास जगद्वन्द्य जगद्भर

जगन्नाथ दयासिन्धो रघुराजे दयां कुरु।।१०६।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— जनैः अर्द्यते इति तथाभूत! जगति वसति इति तथाभूत! जगतः वन्द्य! जगद् भरति इति तथोक्त! दयायाः सिन्धो! जगन्नाथ! रघुराजे दयां कुरु।

भाषार्थ— मनुष्यों के द्वारा याचित! जगत् में सर्वत्र निवास करने वाले! जगत् के पूजनीय! जगत् का भरण पोषण करने वाले! दया के समुद्र! जगन्नाथ! तुम रघुराज पर दया करो।।१०६।।

विवृत्तिः— जनार्दनेति - जनार्दन = जनैः अर्द्यते स्वरक्षायै याच्यत इति तथाभूत। जगद्वास - जगता अन्तर्यामितया वसतीति तथाभूत। जगद्वन्द्य = जगत्पूज्य जगद्भरति - पुष्णातीति तथाभूत दयासिन्धो हे जगन्नाथ! रघुराजे मयि दयां कुर्वित्यर्थः।

त्वदन्यो न गर्तिमेऽद्य त्वामहं शरणं गतः।

जगन्नाथ दयासिन्धो रघुराजे दयां कुरु।।१०७।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— दयायाः सिन्धो! जगन्नाथ! अद्य मे त्वत् अन्यः न गतिः। (अतः) अहं त्वां शरणं गतः। (अतः) रघुराजे दयां कुरु।

भाषार्थ— दया के समुद्र! जगन्नाथ! मेरी आज तुम्हारे बिना कोई गति नहीं है। इसलिये मै तुम्हारी शरण में आया हूँ। इसलिये तुम रघुराज पर दया करो।।१०७।।

विवृत्तिः— त्वदन्य इति - दयासिन्धो = हे जगन्नाथ! पापिनामग्रगण्यस्य मम अद्य पापविपाककाले तत्फलानुभवदशायामित्यर्थः। त्वदन्यः सर्वज्ञत्वसर्वशक्तित्वदयावात्सल्यादिगुणविशिष्टो

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

त्वत्तोऽतिरिक्तः न गतिः - रक्षको नास्तीत्यर्थः। अत इति योज्यम्। अतस्तस्मादहम् उपायान्तरशून्यः त्वां रक्षणौपयिकगुणनिधिं त्वामेव शरणं गतः उपायमध्यवसितवानस्मि। अतः रघुराजे मयि त्वमेव दयां कुर्वित्यर्थः।

त्वदाधारस्त्वद्बलोऽहं त्वमेव शरणं मम।
जगन्नाथ दयासिन्धो रघुराजे दयां कुरु।।१०८।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— दयायाः सिन्धो! जगन्नाथ! अहं त्वम् आधारः यस्य स तथाभूतः, त्वया बलं यस्य स तथोक्तः, त्वम् एव मम शरणम्। (अतः) रघुराजे दयां कुरु।

भाषार्थ— दया के समुद्र! जगन्नाथ! मै तुम्हारे ही आधार वाला हूँ, तुम्हारे द्वारा ही बल वाला हूँ, तुम ही मेरी शरण हो। अतः तुम रघुराज पर दया करो।।१०८।।

विवृत्तिः— त्वदाधार इति - हे दयासिन्धो जगन्नाथ, अहं त्वदाधारः = त्वमेव आधारो रक्षको यस्य तथाभूतः, त्वद्बलः = त्वयैव बलं संसारोत्तरणसामर्थ्यं यस्य तथाभूतः, त्वमेव दयावात्सल्यादिगुणविशिष्टस्त्वमेव मम उपायान्तरशून्यस्य शरणं रक्षणोपायः, अतः रघुराजे मयि दयां कुर्वित्यर्थः।

जगदीशस्य शतकं रघुराजकृतं शुभम्।
पठतां शृण्वतां शश्वज्जगदीशः प्रसीदतु।।१०९।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— रघुराजेन कृतं शुभं जगदीशस्य शतकं पठतां शृण्वतां च जगदीशः शश्वत् प्रसीदतु।

भाषार्थ— रघुराज के द्वारा निर्मित शुभ जगदीश के शतक को पढ़ने वाले तथा सुनने वालों से जगदीश सदा प्रसन्न होवें ।।१०९।।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विवृत्तिः— जगदीशस्येति - रघुराजकृतं रघुराजेन बान्धवाचलाधीशेन रघुराजनाम्ना महाराजेन कृतं विरचितं शुभं पठनश्रवणादिना कल्याणप्रदं जगदीशस्य जगन्नाथस्य शतकं शतश्लोकीपरिमितं ग्रन्थविशेषं पठतां - विनाप्यर्थज्ञानं पाठमात्रं कुर्वतां तदशक्तौ शृण्वतां च जगदीशो जगन्नाथः स्वामी शश्वत् पुनः पुनः सर्वदा प्रसीदतु। तेषामुपरि प्रसन्नोऽभवत्त्वित्यर्थः

रामेन्दुखण्डविधुभिर्मितेऽब्दे तैष उत्तमे।
शनावमायां शतकं जगदीशस्य निर्मितम्।।११०।।

सुक्षेमा-अन्वयसमासादिः— रामैः, इन्दुना, खण्डैः, विधुना मिते अब्दे उत्तमे तैषे शनौ अमायां जगदीशस्य शतकं निर्मितम्।

भाषार्थ— राम-३, इन्दु-१, खण्ड-९ विधु-१ से परिमित वर्ष में उत्तम तैष मास में शनिवार, अमावस्या में इस जगदीश-शतक का निर्माण हुआ।

अनुशीलन— संख्याओं के लेखन की यह पुरानी पद्धति है। यहाँ राम से ३ संख्या, चन्द्रमा से १ संख्या, खण्ड से ९ संख्या (क्योंकि पुराणों में भारत आदि ९ खण्ड माने हैं।) तथा चन्द्रमा से पुनः १ संख्या संकेतित है। इन संख्याओं को 'अंकानां वामतो गतिः' इस नियम के अनुसार उल्टे क्रम से पढ़ना चाहिये। इस प्रकार १९१३ विक्रम संवत् तथा इस में से ५७ घटाने पर १८५६ ईसवी संवत् को पुस्तक का निर्माण सिद्ध होता है।।११०।।

विवृत्तिः— रामेति - रामाः परशुरामश्रीरामबलरामाः त्रयः ३। इन्दुश्चन्द्र एकः १। खण्डानि भारतादीनि नव ९। विधुश्चन्द्रः १। तैः तत्संख्याभिः वामगतिभिः मिते परिमिते त्रयोदशा-

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

धिकैकोनविंशत्या परिमिते इत्यर्थः। अब्दे संवत्सरे उत्तमे श्रेष्ठे तैषे पौषमासे शनौ - शनिवारे अमायाम् - अमावास्यायां तिथौ जगदीशस्य शतकं निर्मितं रघुराजनाम्ना महाराजेन विरचितमित्यर्थः

इति सिद्धि श्री बान्धवेशमहाराजाधिराज श्रीमहाराजा श्री राजा बहादुर श्री कृष्णचन्द्रकृपापात्राधिकारी श्री रघुराज- सिंह जूदेव विरचितं जगदीशशतकं समाप्तम्।।

श्रीबान्धवेशरघुराजविनिर्मितस्य
नीलाद्रिनाथशतकस्य महार्थपूर्तेः।
वाधूलसत्कुलभवो विरचय्य रंगाचार्यो
जगत्पतिपदेऽर्पयति स्म टीकाम्।

)(

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

'वेद वाणी वितानम्' के अन्य प्रकाशन

१. **जगन्नाथ शतक—** श्रीमन्महाराज रघुराज सिंह जूदेव विरचित भक्तिपरक अनुपम हिन्दी काव्य ग्रन्थ। डॉ. सुद्युम्न आचार्य की व्याख्या अनुशीलन आदि सहित।

मूल्य— १५/- रु. मात्र

निम्न सभी पुस्तकों के लेखक— **डॉ. सुद्युम्न आचार्य**

२. **अधिविज्ञानं दर्शनशास्त्रम्** मूल्य— १२०/- रु मात्र

भाषा-संस्कृत— यह भारतीय दर्शनशास्त्र तथा आधुनिक भौतिक विज्ञान विषय पर तुलनात्मक समीक्षात्मक, अपने विषय का अनूठा पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ है। यथास्थान चित्रों, चार्टों का भी उपयोग है।

३. **रोचन्तां शब्दभूमयः** मूल्य— ४०/- मात्र

भाषा-संस्कृत, इंग्लिश। उ. प्र. संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत— इसमें संस्कृत, हिन्दी शब्दों तथा उनकी व्युत्पत्तियों पर आधारित अतिरोचक निबन्धों का संग्रह है।

४. **राजन्तां दर्शनांशवः** मूल्य— ५०/- रु. मात्र

भाषा-संस्कृत, हिन्दी। उ. प्र. संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत— इसमें भारतीय दर्शन तथा आधुनिक विज्ञान पर आधारित अतिरोचक निबन्धों का संग्रह है।

५. **The glory of the vedas** मूल्य— ८/- रु. मात्र

इसमें वेदों की प्रासंगिकता तथा इनकी बहुमूल्य विशेषताओं का अतिरोचक निबन्धों के अन्तर्गत वर्णन है।

Kashi Maharani Collection, Ramnagar Fort, Varanasi